सत्साहित्य-प्रकाशन

विनोबा

के

जंगम विद्यापीठ में

कुंदर दिवाण

●

१९६०
सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशकीय

इस पुस्तक मे विभिन्न विषयो पर विनोबाजी के साथ हुई चर्चाए दी गई है। विनोबाजी पिछले नौ सालो से भूदान के सिलसिले मे पैदल घूम रहे है और उनके ज्ञान और चिन्तन का लाभ बहुत-से लोगो को मिल रहा है। सच बात यह है कि विनोबाजी एक चलते-फिरते विद्यालय है और उनके साथ सीखने को जितना मिलता है, उतना किसी भी शिक्षा-सस्था मे पाना असम्भव है।

विनोबाजी की चर्चाए बडी महत्वपूर्ण होती है। छोटी-से-छोटी बात को भी जब वह बताते है तो उसपर उनके गहरे चिन्तन की छाप होती है।

इस पुस्तक मे बीसियो विषयो पर विनोबाजी के विचार पाठको को पढने को मिलेगे। उनसे एक ओर ज्ञान मे वृद्धि होगी तो दूसरी ओर व्यापक दृष्टि से सोचने की प्रेरणा मिलेगी।

हम पूर्ण विश्वास के साथ कह सकते है कि इस पुस्तक को जो भी पढेगा वह अवश्य लाभान्वित होगा। आवश्यकता इस बात की है कि यह पुस्तक अधिक-से-अधिक पाठको के हाथो मे पहुचे। आशा है, इसमे हमे विज्ञ पाठको का सहयोग मिलेगा।

—मंत्री

प्रस्तावना

सन् १९३२ मे धुलिया-जेल मे क्रमश अठारह रविवारो को गीता के अठारह अध्यायो पर विनोवाजी के अठारह प्रवचन हुए। यह अमर साहित्य स्वर्गीय साने गुरुजी की कृपा से लिपिबद्ध होकर दुनिया को मिला। ये प्रवचन मूल मे मराठी मे दिये गए थे। उनका अब हिन्दुस्तान की प्राय सभी भाषाओ मे अनुवाद हो चुका है। अंग्रेजी मे भी उनका उल्था हो चुका है और अन्य पश्चिमी तथा पूर्वी भाषाओ मे उनका अनुवाद होना असम्भव नही।

लेकिन गीता पर विनोवाजी के ये पहले ही प्रवचन नही है। सन् १९२१ के अन्त मे साबरमती-आश्रम मे नदी के किनारे छोटी-सी विनोबा-कुटी के बरामदे मे रोज सायकाल उनके ऐसे ही प्रवचन हुआ करते थे। उन प्रवचनो का जादू नये-नये शुरू हुए गुजरात विद्यापीठ के नौजवान छात्रो के मन पर ऐसा छा गया था कि छात्र हर रोज सध्या के समय तीन-चार मील पैदल चलकर उन प्रवचनो को सुनने आया करते थे और अधेरी रात मे वापस जाया करते थे। मै खुद उन दिनो साबरमती के आश्रम मे ही रहता था और मै भी आग्रहपूर्वक उन प्रवचनो से लाभ उठाता था। मै कोई भी पुस्तक, पत्र-व्यवहार या नोट्स का सग्रह अपने पास नही रखता हू। फिर भी उन प्रवचनो के मोडी लिपि मे लिखे हुए नोट्स आज भी मेरे पास मौजूद है। उन प्रवचनो की छाप उन छात्रो के तथा मेरे आगे के जीवन पर कुछ तो पडी ही होगी, फलत उन जीवनो के द्वारा उन प्रवचनो का एक मूक या अव्यक्त प्रचार भी हुआ होगा। फिर भी मानना पडेगा कि साने गुरुजी की उपस्थिति मे हुए प्रवचनो की जो कद्र हुई उसकी तुलना मे हमने उन प्रवचनो की ज़रा भी कद्र नही की।

किन्तु ये प्रवचन सिर्फ सन् १९२१ मे या १९३२ मे ही हुए, सो बात नही। पिछले नौ साल से वे हर रोज दो-तीन बार ही नही, वरन् रोज़ाना पन्द्रह-पन्द्रह घण्टे जारी रहे है। उनमे से कुछका टेप रेकॉर्डिंग होता है तथा नोट्स भी लिए जाते है और भारत के ग्यारह प्रदेशो मे प्रथम साप्ताहिको

द्वारा और पश्चात् पुस्तकाकार आम जनता के लिए मुहैया किये जाते है। फिर भी अधिकतर प्रवचन आठ-दस कानो मे व हवा में विलीन हो जाते हैं। इस अनमोल साहित्य का, इन शास्त्रवचनो का, सकलन तथा प्रकाशन कौन करेगा ?

"यास्तेषा स्वैरकथास्ता एव भवन्ति शास्त्राणि।"

—उन सन्तो की, महापुरुषो की, जो सहज वाते होती है वे ही शास्त्र वनती हैं। विशेषत विनोबा की पदयात्रा मे उनके दर्शन के लिए दूर-दूर से आनेवाले लोगो के साथ उनकी नाना विषयो पर अखण्ड सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम चर्चा चलती है। वहुत सारे लोग पाच-पाचसौ मील की दूरी से मिलने के लिए आते हैं और पदयात्रा के समय पाच-दस मिनट का मौका पाकर अपने-अपने प्रश्नो, शकाओ, कठिनाइयो का हल हासिल करते हुए प्रकाश और प्रेरणा लेकर वापस लौटते हैं। कुदरजी ने विनोवाजी की पदयात्रा को 'जगम विद्यापीठ' नाम दिया है। लेकिन मुझे लगता है कि उससे यात्रा का पूरा मूल्याकन नही होता।

धुलिया जेल मे सभा मे दिये गए प्रवचनो का सग्रह साने गुरुजी जैसे समर्थ लेखक ही कर सके। लेकिन इन चलते-दौडते प्रवचनो का सग्रह अपने स्मरण मे से नियमित रूप से करने का विक्रम कुदरजी ने किया। इस वास्ते हजारो पाठक कुदरजी का अहसान मानेगे।

इस सग्रह मे से चार प्रवचन स्वय मेरे लिए हुए है। इसलिए कुदरजी ने अपनी इस पुस्तक के लिए प्रस्तावना लिखने का अनुरोध मुझसे ही किया है। लेकिन इससे मै वहुत ही शर्मिन्दा हुआ हू। उनका सग्रह करने की जिम्मेदारी खुद मेरी ही थी। लेकिन अपने हाथ आया हुआ यह प्रसाद मैने लापरवाही से गवाया। वह तो मेरे भी काम न आता, औरो की तो वात ही क्या ? किन्तु कुदरजी की कृपा से वह सवके लिए सुलभ हो गया है। रसिक-भावुक लोग उसका यथेष्ट सेवन करे।

—अप्पा पटवर्धन

निवेदन

'बुद्ध शरण गच्छामि । धम्म शरण गच्छामि । सघ शरण गच्छामि ।' यह शरण-त्रय सनातन काल से चला आ रहा है। सघ का शास्ता धर्म है और धर्म का वक्ता बुद्ध है। लेकिन यह बुद्ध अपने समय का चाहिए, वर्तमान समय का चाहिए। यह विचार नया नही है। गीता मे वह पाया जाता है। विभूति बताते हुए भगवान् कहते है—"वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि।"—वासुदेव मेरी विभूति है। वासुदेव ही क्यो ? क्योकि वह वर्तमान है, विद्यमान है। धर्म तो सनातन ही है। लेकिन वर्तमान काल मे उसका आचरण कैसे किया जाय, यह बताने का काम देव-पुरुष किया करते है। इन्हें कोई मसीह, कोई पैगवर, कोई अवतार, कोई तीर्थंकर तो कोई बुद्ध कहते है। लेकिन है ये सभी देव-पुरुष ही और 'बुद्ध शरणं गच्छामि' मे इन्हीकी शरण लेने की वात है। बुद्ध उन सभीका वाचक है।

हमारा यह परम सौभाग्य है कि ऐसा एक बुद्ध, ज्ञानी पुरुष, आज अपने देश मे हमारे बीच विहार कर रहा है और हमारा पुरातन होते हुए भी नूतन धर्म जगत के कल्याण के हेतु प्रचारित कर रहा है। इस नये धर्म का नाम है सर्वोदय। इस सर्वोदय का भजन ही दुनिया के दु खो का अक्सीर इलाज है, यह कहता हुआ, सकीर्तन करता हुआ, वह आसेतुहिमाचल चारिका कर रहा है।

"भजन याने सब देहो मे भजन, अर्थात् ईश्वर-भावना से जीव-सेवा के जैसा कलियुग मे दूसरा साधन नही है। भिन्न-भिन्न गुटबदियो के झगडे या कलह कलियुग का स्वरूप है।

"कलि शब्द का अर्थ ही है वह। इसलिए सर्वोदय के हेतु प्रयासरूप भजन ही उसका इलाज है। एक-दूसरे के वास्तविक हित या स्वार्थ आपस मे टकराते नही, यह निज ज्ञान ही उसकी नीव है। उससे मुक्ति का मार्ग सहज ही खुल जाता है। फिर सकुचित खुदी मिट जायगी। आपस मे सद्भाव जाग जायगा। सब ठौर सुख का उफान आयगा। ज्ञानदेव को निवृत्ति गुरु के चरण-

प्रसाद से प्राप्त पते का भजन है यह। उसीमे उसे सदा आनद आता है। किसे न आयगा ?"

भूदान, सपत्तिदान, ग्रामदान आदि सब उसी सर्वोदय के नितनूतन अकुर है। सर्वोदय-पात्र उसका बिलकुल नया अंकुर है। 'मुट्ठी भर अनाज और दुनियाभर मे शान्ति' यह है उसकी महिमा। अणु मे प्रचड शक्ति रहा करती है। पर उसे प्रकट कराने की कुशलता चाहिए। यह सर्वोदय धर्म अणु ही है। उसकी शक्ति प्रकट करने की कुशलता सर्वोदय-पात्र मे निहित है। विनोबाजी ने अणु भी दिया है और उसके विस्फोट का मार्ग भी बतलाया है। उन्होने कल्याणकारी, शक्तिशाली तथा सर्वसुलभ साधन जनता को सौंप दिया है। इसके बाद उनका कार्य समाप्त हो गया है।

"तुम्हेहि किच्च आतप्पं अक्खातारो तथागता।"

—यत्न करना तुम्हारा काम है तथागत तो केवल पथ-प्रदर्शक है।

इस मार्ग के पथिक जहा कही होगे, वही 'सघ' है।

इस शरण-त्रयी का स्मरण करके विनोबाजी के पावन सान्निध्य मे विताये हुए कतिपय सप्ताहो की यह दैनदिनी मै पाठको की सेवा मे उपस्थित कर रहा हू। पदयात्रा मे विनोबाजी के साथ जो चर्चाए हुई, उन्हीको यहा प्रधान रूप से अकित किया गया है। २५-११-५७ को मैं विनोबाजी के पास पहुंचा और अगले दिन से लेकर १-१-५८ याने जिस दिन मैं उनसे विदा हुआ, उस दिन तक की चर्चा यहा सकलित है। एक अखडित समयावधि की यह दैनंदिनी है, इसलिए उसे यहा इकट्ठा किया है।

इसके बाद जब मै फिर उनके पास गया तब फिर से चर्चा शुरू हुई। उसे स्वतत्र रूप से सग्रहीत किया है। वह सकलन यथावसर प्रकाशित किया जायगा।

बौद्ध धर्म और पाली भाषा के अध्ययन के लिए मेरे श्रीलका जाने के बारे मे योजना बन रही थी। ऐसे अवसर पर विनोबा के पास रहने का मौका मिला, जिसको मैंने सहर्ष स्वीकार किया। जिसके लिए श्रीलका जाना था, वह यहा अनायास ही प्राप्त हुआ। श्रीलका के किसी भिक्षु के पास जाने के बजाय साक्षात् बुद्ध के ही सान्निध्य मे क्यो न जाया जाय ?

'षडभिज्ञो दशबलोऽद्वयवादी विनायकः' —ये है उस प्राचीन बुद्ध के नाम। इस आधुनिक बुद्ध का भी नाम वही है—विनायक, और वह काम भी वही कर रहा है। क्या यही नही है वह मैत्रेय बुद्ध, जिसकी प्रतीक्षा की जा रही है ? इसके मुख से भी वही आर्य सत्य, वही करुणा और वही मैत्र प्रसृत किया जा रहा है। इसका हर पद (वचन) धम्मंपद है, और पदयात्रा धर्म-विहार है। वह बुद्ध केवल काशि-कोसल मे सचार करता था, यह बुद्ध अखिल भारत मे सचार कर रहा है। पूज्य विनोबा ने धर्मपद का रचनातर किया है, उसे मै धर्मपद की नव-सहिता कहता हू। यह नव-सहिता सपूर्ण पद-सूची के साथ प्रकाशन के मार्ग पर है। बाद मे उसका सरल गद्यानुवाद दिया जायगा, जो भारत की चौदहो भाषाओ मे प्रकाशित हो जायगा। इसी काम से मै वहा गया था। इसलिए भगवान् बुद्ध, बौद्ध धर्म तथा सबद्ध विषयो की चर्चा अगले पृष्ठो मे अनेक बार छिडी है। इसके अलावा और भी छोटे-मोटे विषयो की चर्चा की गई है। ये तो है स्वैरकथाए ही। स्वैरता के कारण उनकी विविधता के साथ विश्रब्धता भी लक्षणीय है। लक्षणीय है, इसीलिए रक्षणीय भी।

कहा है—'ब्रूयु स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत।'—प्रिय शिष्य के सम्मुख गुरु रहस्य भी खोल दिया करते है। इस न्याय के अनुसार कई गुह्य बाते भी इसमे सम्मिलित हुई है। प्रार्थना यही है कि उन्हे बिना शब्दो के हृदयस्थ किया जाय। ये बाते मै उसी दिन लिख डालता और वल्लभ-स्वामी, तिमप्पा, गुलवाडी, अप्पासाहब, बलवंतसिह आदि उन्हे पढते या सुनते, और उनकी यथार्थता के बारे मे समाधान प्रकट करते।

इतना कहने के बाद कहने के लिए कुछ नही बचता। पुस्तक पाठको के हाथ मे है। कुछ कहना ही हो तो इतना कहूगा कि इसमे जो अच्छा है, वह बडो का है। अगर कही कुछ अनुचित लगे तो आप समझ ले कि वह जान-बूझकर की गई गलती नही, अनजान मे हुई भूल है और उसके लिए मै क्षमा-प्रार्थी हू।

ब्रह्म मदिर,
गोपुरी, वर्धा

—कुंदर दिवाण

विषय-सूची

विनोबा के जंगम विद्यापीठ में

: १ :

भगवान् बुद्ध का विचार

प्रात ५ बजे अरकेरे से निकल पडे। विनोवाजी के साथ वलवन्तसिंह, डोनाल्ड ह्यूम, जर्मन लडकी हेमा, ववई के लोग आदि-आदि जनसमूह था। कुछ देर तक सव चुपचाप चलते रहे। दो-तीन फर्लांग चलने के बाद वदन मे ज़रा-सी गर्मी पैदा हुई और विनोबा की वाक्-गगा वहने लगी।

धम्मपद का अध्ययन

विनोवा वोले—बुद्ध धर्म का अध्ययन मैने श्री वावीकर-कृत धम्मपद के अनुवाद के सहारे शुरू किया। 'ग्रथमाला' मासिक पत्रिका मे उसका प्रकाशन किया गया था। उस माला द्वारा प्रकाशित सव-की-सव पुस्तके मैने पढ डाली थी। साग-सब्जी के वगीचे से लेकर धम्मपद तक सारी पुस्तके मै पढ गया। अग्रेजी, पाली आदि भाषाओ से अनूदित अनेक ग्रथ इस माला मे मैने पढे। जव अपनी भाषा मे पढने को उपलब्ध है तव क्यो न पढू! मूल भाषा मे पढना जव सभव होगा तव देखा जायगा। लेकिन तवतक स्वभाषा द्वारा पढना ठीक होगा। उससे ज्ञान मे वृद्धि तो होती ही है। इसके वाद भट और मडली द्वारा प्रकाशित धम्मपद का अनुवाद पढ लिया। इन दो अनुवादो के वाद धर्मानद कोसवी का किया हुआ गुजराती अनुवाद गुजरात विद्यापीठ मे मिला। वहा पाली तथा अर्धमागधी के कई ग्रथ थे। उनमे एक व्याकरण-ग्रथ भी था। उसे भी देख लिया। वीच मे कुर्तकोटि-द्वारा सपादित सुदर अक्षरो मे मुद्रित मूल सहिता देखी। उसमे पादटिप्पणी मे पाठ-भेदो का निर्देश था। उत्तरप्रदेश की भूदान-पदयात्रा मे बुद्ध-जयती के अवसर

पर लखनऊ मे मैने व्याख्यान मे कहा था कि यह मेरा धर्मचक्र-प्रवर्तन ही चल रहा है। बाद मे मै काशी गया, जहा सारनाथ की महाबोधि सोसायटी के सदस्यो ने सारनाथ आने का मुझे निमत्रण दिया। इस निमत्रण मे उन्होने कहा था, "हम मानते है, आप महात्मा बुद्ध का ही काम कर रहे है।" उनके इस प्रकार के उल्लेख के कारण तथा उनके प्रेमाग्रह के वश होकर मै ६ सितबर को सारनाथ गया। वहा उन्होने मुझे दो ग्रथ दिये—एक 'धम्मपद', जिसमे सस्कृत छाया तथा हिन्दी उल्था था, और दूसरा 'बुद्ध-चर्या'। मैने उसे बडा शुभ शकुन माना, क्योकि मै विहार मे प्रवेश करना चाहता था। मेरा धम्मपद का अध्ययन शुरू हुआ और विहार मे प्रवेश करने के बाद एक लाख एकड़ जमीन प्राप्त करने का सकल्प भी किया गया, वह पूर्ण हुआ। राका के राजा ने एक लाख एकड़ बजर भूमि तथा उपजाऊ भूमि का छठा हिस्सा याने दो हजार एकड जमीन दान मे दे दी। वह दिन था बुद्ध-जयन्ती का। मैने उसे भगवान् बुद्ध का ही कृपा-प्रसाद माना। मेरा धम्मपद का अध्ययन जारी था ही। मैने एक लेख लिखा—'धम्मपद : एक अध्ययन'। उसमे बुद्ध की समन्वय-दृष्टि का विवेचन किया।

बुद्ध की सिखावन

आज बुद्ध का विचार-धन सब ससार को आकृष्ट कर रहा है। दुनिया को उसकी जरूरत है। बुद्धिवाद, जाति-भेद पर प्रहार, सन्यास, कारुण्य, निर्वैरता आदि उसके आकर्षण है। इनमे कारुण्य तथा निर्वैरता को मै प्रमुख मानता हू। अन्य बाते पहले भी मौजूद थी। उपनिषदो मे बुद्धिवाद बुद्ध की अपेक्षा कम नही। इसलिए मै जो उसका रचनान्तर कर रहा हू उसमे निर्वैरता, सुशीलता आदि बातो से प्रारभ किया गया है। ध्यान मे निर्वैरता, कारुण्य, सर्वभूत-हित भरा रहता है। ध्यान मे से बाहर आते ही ध्यानी, ध्यानयोगी खाने नही, भूखो को खिलाने चल पडेगा, यद्यपि ध्यान की समाप्ति के अनतर बुद्ध को खाने का ही सयोग प्राप्त हुआ।

बुद्ध का मासाशन

बुद्ध का पहला तथा आखिरी भोज प्रसिद्ध है। कहते है कि आखिर

मे 'सूकरमद्दव' खाकर ही बुद्ध चल बसे। लेकिन मैंने कही पढा है कि 'सूकर-मद्दव' का मतलब 'मास' नही। बुद्ध से ४० साल पहले महावीर का उदय हुआ था। उनका जीव-दया का उपदेश सब क्षेत्रो मे फैला हुआ था, और बुद्ध ने भी खुद प्राणाघात-निवृत्ति का सिद्धान्त प्रसृत किया था। ऐसी अवस्था मे विश्वास नही किया जा सकता कि वह मास खाया करते थे, या मास खाकर वह मर गये।

भिन्न भाषा, समान विचार

धम्मपद मे हमारे विचारो या आचारो के प्रतिकूल परिभाषा क्या पाई जाती है, इसका विचार करना चाहिए। उस प्रकार की परिभाषा उस-मे मैंने नही पाई। योग, सयोजन आदि शब्द उसमे पाये पाते है, पर उन्हे व्यापक अर्थ मे समझ लेने से कोई दिक्कत नही रहती। बौद्ध तथा जैन परिभाषा मे योग का अर्थ बधन है, फारसी परिभाषा मे 'असुर' का अर्थ 'देव' तथा 'देव' का 'राक्षस' रहता है, पर इस शब्द-भेद के बावजूद विचा-रैकता लक्षणीय है।

बुद्ध मौनी हुए

'कलीलागिं झाला असे बौद्ध मौनी' (कलियुग मे बुद्ध मौनी होगये है)—सत रामदास के इस वचन मे बडी मार्मिकता मै महसूस करता हू। उसमे बुद्ध को मौनी कहा है, यानी आत्मा, ब्रह्म आदि बातो के बारे मे मौन धारण करनेवाला कहा है। बुद्ध ने इन बातो का निषेध नही किया है। मा अपने बच्चे को नाम से बार-बार पुकारती है, पत्नी पति का नाम नही लेती। पर दोनो के मन मे प्रेम तो समान ही रहा करता है। बुद्ध स्वर्ग-नरक, पूर्वजन्म-पुनर्जन्म, बध-मोक्ष आदि बातो मे विश्वास करते है, तो भिन्नता रही कहा ? आप कहते है—'गेहकारक दिट्ठोसि' (गेहकारक तुम देखे गये)। यह देखनेवाला कौन है ? वह उस 'गेहकारक' को 'बधकृत्' को देखता है, और कहता है कि वह (बधकृत्) फिर से बधन मे नही डाल सकता। यह आत्मशून्यवाद का लक्षण बिल्कुल नही। आत्मा के स्वरूप के बारे मे मत-भिन्नता होगी तो भले ही रहे। हिन्दूधर्म मे वह मौजूद है ही।

अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत आदि विश्वास-भेद आत्मा के स्वरूप के सबध मे मतभेद के ही निदर्शक है। उसी प्रकार बुद्ध का भी भिन्न मत हो सकता है।

जाति-भेद-भजन अवतार-कार्य नही

दिखाई नही देता कि बुद्ध ने जाति-भेद का उच्छेद किया। उसे उनका अवतार-कार्य नही कहा जा सकता। ऐसा मानने से यह कहना पडेगा कि भगवान् का अवतार व्यर्थ हुआ, क्योकि जाति-भेद अब भी बना ही हुआ है। एकनाथ ने भी भेड के बच्चे को गोद मे उठा लिया था, जात्यभिमान का तीव्र निषेध किया था। सभी सन्तो ने ऐसा किया है। लेकिन वे जात्युच्छेद पर तुले थे, यह नही कहा जा सकता। बुद्ध के बारे मे भी यही मानना चाहिए। हा, यह कहा जा सकेगा कि और सन्तो की अपेक्षा बुद्ध की भावनाए इस विषय में तीव्रतर थी। वह उनकी नसीहत थी। वह उनका जीवन-कार्य नही था। अब यह कार्य-क्रम हमे अपनाने के लिए बाकी है। चाहे तो हम उसे अपना सकते हैं।

बुद्ध हिदू ही थे, पर थे सुधारवादी

सक्षेप मे, बुद्ध हिन्दू-धर्म के एक महान् सुधारक थे, वह हिदू थे और हिदू रहकर चल बसे। यह है मेरा विश्वास। हमारे समाज ने भी उन्हे अवतार मान कर यही मान्य किया है। सन्यासी के नाते वह धर्मातीत होकर मरे, हम कह सकते है। यह बात वैदिक सन्यासी को भी लागू है। साराश यह कि यह सिद्ध नही होता कि वह अपनी खिचडी अलग पकाना चाहते थे।

मलेबेन्नूर के मार्ग पर,
२६ नवम्बर १९५७

: २ :

चीनी संत लाओत्सी का ताओ

विनोबा—लाओत्सी का 'ताओ' तन् धातु से निकला हो। 'तन्', 'ताय',

'तायी' शब्द वेदो मे पाये जाते हैं।

मैने कहा—लाओत्सी-प्रणीत 'ताओ तेह किग' ग्रथ मे ब्रह्म-विद्या तथा निष्काम कर्मयोग का स्पष्ट रूप से उपदेश पाया जाता है। जान पडता है, किसी औपनिषदिक ऋषि से यह विचार उसे प्राप्त हुआ हो। वह बुद्ध का समकालीन या उससे जरा-सा प्राचीन है। इससे यह मालूम होता है कि बुद्धपूर्व काल मे वैदिक धर्म चीन मे तथा अन्यत्र भी गया था।

विनोबा—यह सभव है। इसीलिए मै कहता हू कि 'ताओ' शब्द 'तन्, ताय, तायी' से व्युत्पन्न हुआ हो।

'रहीम ताओ तू' मे रहीम पश्चिमवाला है, तो ताओ पूरबवाला। इसके अलावा रहीम मे प्रवृत्ति है, तो ताओ मे निवृत्ति। उस रचना मे दोनो प्रवृत्तियो का सगमन हुआ है।

मलेबेन्नूर,
२६-११-५७

: ३ :

जगत् के धर्मग्रंथ

सुबह ५ बजकर ५ मिनट पर मलेबेन्नूर से निकले। आज का पडाव आठ मील के फासले पर वेल्लोडी ग्राम मे होनेवाला था। जाडा कल की अपेक्षा जरा कम था, या यो कहिये, हवा कम बहती थी। आज रास्ते मे नदी थी। विनोबा और कई लोग नाव मे बैठकर नदी पार कर गये। हम पैदल ही गये। सूर्योदय के समय यात्रा थोडी देर के लिए रुक गई। सूर्याभिमुख होकर विनोबा सूर्यबिब के ऊपर आने तक एकटक देखते रहे। कुछ मत्र भी उन्होंने पढे। यह समत्रक सूर्योपस्थान–सूर्यनारायणोपस्थान—पूरा हुआ और यात्रा फिर से जारी हुई। आज पहले मैने ही चर्चा का सूत्रपात किया। सूर्योपस्थान के समय तक मुझसे चर्चा चलती रही। बाद मे बबईवालो से तथा बीच-बीच मे बलवतसिह से भी बातचीत हुई।

बुद्ध का प्राचीन साहित्य से परिचय नही

वडी देर तक चलने के वाद जब मैंने देखा कि विनोवा बोल नही रहे हैं, तो मैं आगे वढा और बोला—विनोवाजी, भगवान् बुद्ध के समय मध्यदेश मे बुद्ध के साथ ही कुल सात धर्म-प्रवर्तक विचरण कर रहे थे। बुद्ध स्वय ज्ञान की खोज मे निकले थे। गीता, उपनिषद्, वेद आदि से उनका परिचय आवश्यक था। लेकिन धम्मपद आदि साहित्य से नही दिखाई देता कि उनका उनसे अच्छा परिचय रहा हो। मुझे इस वात का आश्चर्य होता है कि गीतोपनिषद् वेदादि साहित्य की उक्तियो का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष उल्लेख उनके द्वारा कही भी किया हुआ नही पाया जाता।

बुद्ध पढे-लिखे नही थे

विनोवा बोले—बुद्ध पढे-लिखे पडित नही थे। उनके पिता ने उन्हे सुख मे रखने का प्रवन्ध किया था। यह अचरज की वात नही कि उन्होने बुद्ध को अध्ययन के कष्टो से भी दूर रखा हो। इस कारण प्राचीन वैदिक साहित्य से वह परिचित नही थे। उपनिषद् तथा गीता की रचना हुए युगो बीत गये थे। हजार-हजार वरस व्यतीत हो चुके थे। गीता जब कही गई तब उपनिषदो का लोप हुआ था। उन्हे कोई बिरला ही जानता था। **'स कालेनेह महता योगो नष्ट परतप'** गीता मे कहा है। बुद्ध के समय मे भी यही बात हुई होगी। इसमे अचरज ही क्या ! वेदो और उपनिषदो के बीच इससे भी अधिक समय वीत चुका था। इसके अलावा उस समय ज्ञान-प्रचार के आज जैसे साधन उपलब्ध थे ही नही।

ब्रह्मविद्या की अपेक्षा योगशास्त्र अधिक प्रचलित

मैंने कहा—जान पडता है कि बुद्ध, जिन दोनो—अलारकालाम और उद्रक रामपुत्र—के पास गये थे, उनसे उन्हे प्रमुखत समाधि-योग का ज्ञान प्राप्त हुआ था। पतजलि मुनि उस समय या उससे कुछ पूर्व होगये हो। मुझे लगता है कि इसी कारण ब्रह्मविद्या की अपेक्षा योगशास्त्र का प्रचलन उस समय अधिक रहा हो।

सूत्रग्रथ दर्शनशास्त्र की प्रगति के निदर्शक

विनोवाजी बोले—पतजलि का समय उसके आसपास रहा हो, पर योगदर्शन पुराना ही है। दर्शनशास्त्र जव पूर्णावस्था को पहुच जाता है तव सूत्रग्रथो की निर्मिति होती है। पतजलि के पूर्व योगदर्शन का पर्याप्त विकास हुआ था। उन्होने उसे सूत्र-रूप मे ग्रथित किया है।

गीता का प्रचार पहले नही था

आज जिस प्रकार हमारे बीच गीता का प्रचार दिखाई देता है वैसा पहले नही था। शकराचार्य-प्रणीत भाष्य के अनतर ही उसका पुनरुज्जीवन हुआ। उसके पूर्व गीता पर ज्ञान-समुच्चयवादी टीका-ग्रथो के अस्तित्व का पता शाकरभाष्य से चलता है, तथापि गीता का वहुत अधिक प्रचार नही पाया जाता। शकराचार्य के वाद रामानुज आदि अन्य आचार्यो ने भाष्य रचे, जिनका प्रचार हुआ। तो भी गीता का प्रचार केवल पडितो तक सीमित था, आम जनता उससे अपरिचित रही।

ज्ञानदेव का महदुपकार

लेकिन ज्ञानेश्वर ने 'ज्ञानेश्वरी' का प्रणयन करके गीता को आम जनता तक पहुचा दिया। अन्य प्रातो मे ऐसा प्रयास कही नही किया गया। यह ज्ञानदेव का महाराष्ट्र पर वडा अहसान है। एकनाथ ने उन्हीका अनुसरण किया। भागवत के दशम स्कध से उन्हे वडा प्यार था, लेकिन उन्होने टीका लिखी एकादश स्कध की। उस टीका-ग्रथ मे उद्धव को भगवान् का किया उपदेश ग्रथित किया है। अन्य प्रातो मे यह नही पाया जाता।

गीता ही हिंदूधर्म का प्रमुख ग्रथ

आधुनिक समय मे ईसाइयो के 'वाइविल' के समान हमारा कौन-सा 'वल' है, इस वात का विचार करते हुए सवकी दृष्टि गीता पर पडी। वही हिन्दूधर्म का प्रमुख ग्रथ कहला सकेगा। आज के युग मे तिलक, अरविंद, गाधी आदि ने उसीपर वल दिया। इस कारण वह जनता मे प्रसार पा गया है। वैसा प्रसार उसका पहले कभी नही था। दूसरा कोई ग्रंथ उसका

प्रतिद्वन्द्वी नही है। गीता मे ज्ञान है, कर्म है और साथ-ही-साथ भक्ति भी है। वही उसकी ताकत है। भक्ति के कारण ही वह लोकमान्य होगया है। उसमे सब है। उसमे जो बाते नही है वे हिंदूधर्म मे यद्यपि पाई जाय तो भी वे हिंदूधर्म के सारतत्त्व नही है। व्रतबध-विवाह की विधिया गीता मे नही है। उन्हे अगर कोई आचरण मे न लाये तो भी नही कहा जा सकता कि वह हिंदू नही है। ऐसा यह गीताग्रथ जगत् का ग्रथ होगा। इसमे जो कृष्णोपासना है, उसका व्यापक व्यक्ति-निरपेक्ष आशय समझ लेने से यह ससार मे मान्यता पा जायगा।

व्यक्ति-निरपेक्ष गीता ससार का धर्मग्रथ

कबीरपथियो का विश्वास है कि कबीर कोई व्यक्ति नही, वह एक शक्ति है। न उसने व्याह किया था, न उसके कोई पुत्र था। कबीर याने महान्। कबीरपथी कहते है—देखिये, कबीर का नाम उपनिषदो मे मिलता है 'कविर् मनीषी परिभूः स्वयभूः।' वैसे ही कृष्ण को भी व्यक्ति नही समझना चाहिए। यह हो जाय तो गीता जगत् का धर्म-ग्रथ हो सकेगी। उसमे वह लियाकत है।

गीता के प्रतियोगी धर्मग्रथ

बाइबिल मे का मैथ्यू तथा धम्मपद गीता के प्रतियोगी धर्मग्रथ है। कुरान शरीफ अरबी भाषा के कारण जोरदार मालूम होता है, लेकिन अनुवाद मे उसका आकर्षण जाता रहता है। भाषा ही उसका बल है। वह अरबी भाषा का अभिजात ग्रथ है। उसमे मनुस्मृति की भाति कुछ कानून, भागवत की भाति कुछ भक्ति-भावना, कई कथाए और थोडा-सा तत्त्वज्ञान है। मेरा विचार है कि उसका निचोड निकालू। पर जब बनेगा तब। इस अवस्था मे कुरान दुनिया का धर्मग्रथ नही हो पाता। वह गीता का प्रतियोगी नही। जिन्हे ईश्वर के प्रति खिचाव नही, आदर-भाव नही, उन्हे धम्मपद बडा ही आकर्षक लगता है, इस कारण वह दुनिया का धर्मग्रथ है।

गीता नास्तिको की भी पथप्रदर्शक

जिन्हे ईश्वर के नाम से परहेज है उनके लिए भी गीता मे गुजाइश है। "अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुमद्योगमाश्रित । सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ।" गीता मे भगवान् ने यह कहा है। मुझसे प्राध्यापक लिमये ने पूछा था—क्या 'मेरा आश्रय छोडकर सर्व कर्म-फल त्याग करो' ऐसा ईश्वर-निरपेक्ष अर्थ करना उचित होगा ? मै तो इसी अर्थ को मानता हू। इसका मतलव यह हुआ कि गीता उनके लिए उपादेय है, जो ईश्वर-निष्ठ है और उनके लिए भी जो ईश्वर के नाम से भागते है, यानी आस्तिको तथा नास्तिको दोनो के लिए समान रूप से उपादेय है।

धम्मपद केवल नीतिपरक नही

मै कहा करता था कि धम्मपद नीतिपरक ग्रन्थ है, विदुरनीति की भाति। पर वह केवल नीतिपरक नही, उसमे सूक्ष्म आध्यात्मिक विचार है। इस कारण वह भी जागतिक धर्मग्रथ है। इसलिए उसका रचनान्तर करके सव भाषाओ मे उसका उल्था प्रकाशित करने की मेरी योजना है। मैथ्यू के गॉस्पेल का गिरि-प्रवचन या पर्वतोपनिषद् भी इसी प्रकार सवको पसद आने लायक है। वह सव-का-सव सीधे स्वीकृत किया जाता है। पर सपूर्ण वाइविल, इस प्रकार स्वीकृत नही हो सकता। गीता और धम्मपद सपूर्ण रूप मे स्वीकरणीय हो सकेगे।

धर्म . अफीम की गोली

मार्क्सवादी धर्म को अफीम की गुटिका वताते है। सस्कृत-साहित्य मे 'सुरा' शव्द का प्रयोग मिलता है, पर अफीम की उपमा नई चीज है। वह जिस दिन मेरे पढने मे आई, उसी रात को मैने एक श्लोक रचा—

आहे दरिद्र दुबला जड जीव एक। आयुष्य कठित खुशाल भुलूनि दु.ख।
देवा, तुझें मधुर नाम अफू फुकाची। सेवूनि घेत बघ झोप कशी सुखाची॥

अर्थात्—'मै एक दरिद्र, दुवला, जड जीव हू, दु ख को भूलकर आराम से आयु व्यतीत कर रहा हू। हे ईश्वर, तुम्हारा मधुर नाम मुफ्त की अफीम है, जिसे सेवन कर मै सुख की नीद सो जाता हू।'

दरिद्र, दुवला और जड से मतलव है लक्ष्मी, शक्ति तथा सरस्वती तीनो देवियो की परवा न करनेवाला, केवल भगवच्छरण।

मै—आपने कमाल कर दिया इस अफीम को मुफ्त की कहकर। सब दु ख हरनेवाली यह विस्मरण की दवा विना मूल्य है। उसे अफीम भले ही कहे, पर अफीम के पैसे देने पडते है, जो दोप इस अफीम मे विद्यमान नही। और इसे आपने अफीम कहा तो भी कोई चिता नही। यह देखिये, मै मजे मे हू, न किसी प्रकार की चिता है, न किसी प्रकार की परवा!

बेल्लोडी के पथ पर
२७-११-५७

: ४ :

धर्म-प्रसार और राजसत्ता का आधार

आज ५-३० पर निकल पडे, आधा घटा देर से, क्योकि पडाव हरि-हर पाच मील के फासले पर था। समय भी कम था। इसलिए मैने चर्चा मे भाग नही लिया। वलवतसिह और ववईवाले के साथ ही चर्चा जारी रही।

हरिजनो की दशा

प्रारम्भ मे वलवतसिह ने वेल्लोडी की जानकारी दी। गाव की आवादी मे मुसलमान और हरिजन काफी तादाद मे है। पहले उनके पास जमीन थी। कर्ज के मारे जमीन धीरे-धीरे सवर्णों के हाथ मे चली गई और अव वे सिर्फ मजदूर वन गये है। मर्द की मजूरी १२ आने और औरत की ६ आने। यह भी वारह महीने नसीव नही।

धर्मातर हरिजनो मे से हुआ

विनोवा वोले—सवर्णो ने हरिजनो पर पुरातन काल से अन्याय किया है और आज भी उनकी आखे नही खुलती। ईसाइयो और मुसलमानो ने उन्ही मे से धर्मान्तर किये। कोई भी उच्चवर्णीय मुसलमान या ईसाई नही

बना। न मुसलमान को उन्होने अपने से उच्च माना, न ईसाई को। और दिखाई क्या देता है ? मद्य-मास को न छूनेवाला आदमी धर्मातर के वाद शराबी, मासाहारी वन जाता है। इसका मतलव यह है कि वह अवनत हो जाता है, उसकी उन्नति नही होती। वह सुसस्कृत नही वनता, वल्कि तामस वन जाता है।

भारत मे ईसाई धर्म वहुत पुराना

वैसे तो ईसाई धर्म हिंदुस्तान मे ईसवी सन् की पहली सदी मे ही आया है। ईसा के वारह शिष्यो मे से एक तो ईसा के जीवनकाल में ही समाप्त हो गया था। वाकी ग्यारह मे से सेंट थॉमस दक्षिण मे मलावार मे आया था। वहा उसने ईसाई धर्म का प्रसार किया। पर वह ज्यादा फैल नही पाया।

ईसाई धर्म के वारे मे मेरा पूर्वाग्रह

लेकिन बाद मे पुर्तगाली, फ्रासीसी और अग्रेज आये और राज्यकर्ता वने। उन्होने सत्ता के वल पर, अत्याचार से धर्मान्तर जारी किया। मुसलमानो ने भी वही किया। इसलिए उनके धर्मों के वारे मे कभी भी अनुकूल मत नही रहा। गोरा आदमी देखकर मेरे दिल मे घृणा पैदा हुआ करती।

मैं सावरमती आश्रम मे था। वहा एक वार एड्रूज आये। वापू ने उनसे मेरा परिचय करा दिया। वापू वोले—'आश्रम मे लोग आते है कुछ सीखने, कुछ ले जाने। पर यह आया है आश्रम मे कुछ देने। इससे आश्रम वहुत-कुछ पायेगा।' यह वात वाद मे महादेवभाई ने मुझसे कही।

एड्रूज एक वार वर्धा पधारे थे। उनका सार्वजनिक व्याख्यान हुआ। अध्यक्ष मैं था। एड्रूज निष्कलक तथा सच्चे धर्मनिष्ठ थे। व्याख्यान के वाद मैंने उनसे माफी मागी। मै वोला—"ईसाइयो के वारे मे मेरे मन मे असद्भाव था, घृणा थी। मै माफी चाहता हू।"

एड्रूज वाद मे जमनालालजी से वोले, "यह आदमी अजीव दिखाई देता है। इसके विषय मे वापू ने मुझसे पहले ही कहा था, लेकिन आज उसका अनुभव मिला। कितना सच्चा दिल है! इसे क्या जरूरत थी मुझसे माफी मागने की ? मैने थोडे ही उसके दिल मे झाका था ? जमनालाल-

जी पर भी इस बात का बडा असर हुआ। वह बोले, "जो सत्यनिष्ठ बनना चाहता हे उसे-चाहिए कि वह अपना दिल साफ रखे। इसकी मिसाल मुझे मिल गई। मन मे कही भी मलिनता को रहने नही देना चाहिए। कोना-कोना साफ रखना होगा।"

ईसाई धर्म क्यो नही फैला ?

ईसाई अगर राजसत्ता का आधार धर्म-प्रचार के लिए न लेते तो वह धर्म अपनी सेवापरायणता के बल पर भारतीय धर्मों मे से एक बन जाता, लेकिन वैसा नही हो सका। राजम्मा के पिता सनातनी हिन्दू है। उनके देवगृह मे पचायतन हे। वही ईसा की भी तस्वीर है। ईसाई अगर जुल्म-जबरदस्ती का पल्ला न पकडते, राजसत्ता का आधार न लेते, तो ईसा को एक सत के रूप मे हिन्दुओ के देव-मन्दिर मे स्थान मिल जाता।

मद्रास की तरफ एक पादरी सन्यासी बना और उसने अनेको को ईसाई धर्म मे दीक्षित किया। यह स्वेच्छा से होगया। इस प्रकार ईसाइयो ने सेवा-भाव से काम लिया होता तो ईसा जरूर हिन्दुओ की सन्तमालिका मे स्थान पा जाते और वह धर्म यहा मिलकर प्रसार पा जाता। लेकिन उनकी प्रेरणा धर्म-प्रचार की है और उसीके लिए उनका सेवा-भाव है। इस कारण से और राजसत्ता पर निर्भर रहने से वह धर्म भारत के लिए पराया रहा और इस समाज के लिए अपनापा नही पैदा हुआ।

इस्लाम का भी वही हाल

महमदी धर्म का भी हाल वही हुआ। वह भी राजसत्ता के बल-बूते पर पनपा। यही वजह है कि उसके विषय मे, उसके धर्मग्रन्थ कुरान के बारे मे, लोगो के दिल मे अजीब-अजीब धारणाए घर कर गई। मै जब कुरान का अध्ययन करने लगा, तब एक बडे आदमी ने मुझे लिखा कि 'चूकि आप कुरान का अध्ययन करते है, उसमे जरूर अच्छाई भी है। वास्तव मे जो करोडो लोगो का धर्मग्रन्थ है उसके बारे मे सहज-भाव से यह धारणा चाहिए कि वह बुरा होगा कैसे। लेकिन यह कैसी अजीब बात है कि उस कारण से नही, बल्कि मै उसे पढ रहा हू, इस वजह से उसमे अच्छाई देखी जाय!

लेकिन यह धारणा धर्म के नाम पर राजसत्ता-कृत अत्याचारो का परिपाक है। इसलिए धर्म को चाहिए कि वह राजसत्ता का आश्रय न ले।

हरिहर की राह पर
२८-११-५७

: ५ :

बुद्धमत और कूटस्थ आत्मतत्त्व

सुवह ५ वजे हरिहर से चले। अगला पडाव दावणगेरे नौ मील की दूरी पर है। वहा कपडे की तथा तेल की मिले है। शहर व्यापारी है। वहा दो दिन ठहरना है। आज हमारे साथ वल्लभस्वामी भी है।

बुद्ध के अनात्मवाद का स्वरूप

थोडी देर चलने के वाद मै बोला—विनोवाजी, भगवान् बुद्ध ने अपने मार्ग को मध्य मार्ग कहा है। न वह क्रियावादी थे, न अक्रियावादी। उनके विशिष्ट सिद्धान्त से अनात्मवाद उद्भूत हुआ है। यह मेरा मतव्य है। वेदान्ती कूटस्थ नित्य आत्मा मानते है। इस कारण उनका सिद्धान्त है कि ज्ञान से ही कैवल्य की प्राप्ति होती है (ज्ञानदेव तु कैवल्यम्)। उनकी धारणा है कि मोक्ष-प्राप्ति के लिए किसी भी कर्म की आवश्यकता नही। भगवान् बुद्ध के समय जो अक्रियावादी थे और जो क्रियावादी थे, दोनो से भिन्न मत बुद्ध ने अपनाया है। इन दो अन्तिम स्थितियो के बीच उनका मत था। एक वार उनसे पूछा गया—आप क्रियावादी है या अक्रियावादी? वह बोले—"मेरा कहना है कि अकुशल कर्म नही करने चाहिए, इसलिए मुझे अक्रियावादी कहा जा सकेगा। और मै कहता हू कि कुशल कर्म करने चाहिए, इसलिए मै क्रियावादी भी कहला सकता हू।" इसका मतलव यह है कि उन्हे सत्-क्रियावादी कहना पडेगा। अर्थात् वह कूटस्थ नित्य आत्मतत्त्व नही मानते थे, वरन् परिणामि-नित्य आत्म-तत्त्व के वह कायल थे। मालूम होता है कि यही उनका सम्यक ज्ञान वा सवोधि है।

नमस्यामो देवान्ननु हतविधेस्तेपि वशगा
विधिर्वन्द्यः सोऽपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः।
फलं कर्मायत्तं यदि, किममरैः किं च विधिना ?
नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति॥

मेरी राय मे यह भर्तृहरि-प्रणीत श्लोक बुद्धमत का ही प्रतिपादन करता है। कहना पडता है कि अपने शुभ कर्मों के अनुसार मनुष्य उत्तरोत्तर उन्नत होता जाता है, इसी प्रकार निरतर उन्नति करते जाना ही उसका स्वभाव है—यह बुद्ध का मन्तव्य था। इसके अनुकूल यह है कि आत्मतत्त्व निरतर विकासशील है। नारदभक्ति-सूत्र मे इसके अनुकूल विचार पाया जाता है। उसमे कहा गया है—वह 'प्रतिक्षणवर्धमानं अविच्छिन्नं सूक्ष्मतरं अनुभवरूपम्' है। इस विषय मे आपकी सम्मति क्या है ?

बुद्ध ज्ञानवादी ही थे, कर्मवादी नही

विनोबा—बुद्ध का मध्यमार्ग सयतता या सुवर्णमध्य (गोल्डन् मीन्) का वाचक नही। उसके लिए बुद्ध की आवश्यकता नही। यदि बुद्ध मोक्ष मे विश्वास न करते तो उन्हे कर्मवादी कहना उचित होता। लेकिन जब वह मोक्ष मे विश्वास करते है तब वह अवस्था 'कर्म' से प्राप्त कैसे होगी ? वह मोक्षरूप शुद्धि अगर कर्म द्वारा प्राप्त होनेवाली हो, तो वह मलिन होगी। उसे फिर से शुद्ध करना होगा। वह मोक्षावस्था कैसी, जिसे बार-बार शुद्ध करना पडे ?

कर्म का आधार क्या ?

मैने पूछा—फिर कर्म का आधार क्या है ?

विनोबा—कर्म का आधार यही देह है। उसके लिए अलग आधार की आवश्यकता नही। मोक्ष के लिए आधार की आवश्यकता हे, वह है आत्मा।

आत्मतत्त्व का विचार

मै—क्या यह कहा जा सकता है कि बुद्ध कूटस्थ नित्य आत्मतत्त्व

मानते थे ?

विनोवा—गीता कूटस्थ नित्य आत्मतत्त्व मानती है, लेकिन उसने और वादो का भी निर्देश किया है। गीता यही कहकर नही ठहरती कि **'जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु'**, इतना ही कहती तो वह दु ख का, शोक का, कारण हो जाता। उसीके साथ गीता कहती है—**'ध्रुवं जन्म मृतस्य च'**। इसका अर्थ 'देहातीत नित्य तत्त्व माना गया है' नही लिया, तो भी मरने के वाद अपरिहार्य रूप से जन्म होगा ही, यह अर्थ अभिप्रेत है। इसलिए शोक का कोई कारण नही रहता। इसके अलावा कहा गया है—**'अथ चैनं नित्य-जातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्'**। उसका अनुवाद गीताई मे यो किया है—**'अथवा पाहसी तू हा मरे जन्मे प्रतिक्षणीं'** (या तुम इसे हर क्षण जनमते-मरते देखते हो)। यह एक प्रकार का आत्मवाद ही है। यह कूटस्थ नित्यतत्त्व नही है, तो भी परिणामि-नित्यत्व है। आत्मतत्त्व के स्वरूप के सम्वन्ध मे ऐसे भिन्न मत हो सकते है। ब्रह्मसूत्र ग्रथ मे भी तीन चिन्तको मे तीन भिन्न मत उल्लिखित है—(१) **प्रतिज्ञा-सिद्धेर लिङ्ग, आश्मरथ्य.**। (२) **उत्क्रमिष्यन् एव भावात्, इति औडुलोमि.**। (३) **अवस्थिते, इति काशकृत्स्नः**।

मैं—यह जो आत्मतत्त्व है उसे कूटस्थ नित्य मानने पर भी उसमे ज्ञान-क्रिया तो जरूर रहेगी। अगर वह भी उसमे न रहे तो उसे जड कहना पडेगा। उसका वर्णन 'सत् चित् आनद' किया जाता है।

विनोवा—उसमे क्रिया का अस्तित्व मानने पर उसे अपूर्ण कहना पडेगा। किसी भी क्रिया की गुजाइश उसमे कहा ! 'वह' दु ख जानता है, इसका अर्थ यह है कि 'वह' दु ख से अलग है। इसलिए उसे आनद-स्वरूप कहते हैं। लेकिन वह आनद का अनुभव नही करता। वर्फी अपना स्वाद नही जानती। शकराचार्य कहते है, "जो कहता है कि मैं दु खी हू वह यही ज़ाहिर किया करता है कि मैं 'अदु ख' हू।" नारदभक्ति-सूत्र ठीक नही। वर्फी का स्वाद लेने जैसा वह अनुभव नही। यदि वह वैसा हो, तो उसे मुक्ति नही कहा जा सकेगा।

दावणगेरे की राह पर
२९-११-५७

२९-३० नवम्बर को पडाव दावणगेरे मे रहा। ३० तारीख को सवेरे चलते हुए चर्चा तो हुई, पर वह कुछ दूसरे प्रकार की थी।

: ६ :

ग्रामदान और 'हम-हमारा'

वरीयान् एप व प्रश्न·

दावणगेरे से दोड्डुमगलगेरे जाते समय वहुत वडा जनसमूह साथ था। कल कई लडकियो ने लिखित प्रश्न पूछे थे। उनसे विनोवा ने कहा था, "कल सवेरे ग्राना। चलते-चलते तुम्हारे सवालो के जवाव दे दूगा।" वडे तड़के वे उठकर ग्राई थी। उनके ग्रनेक प्रश्नो मे एक वडा मार्मिक था। उसने विनोवा को सन्तोष दिया। वह वोले कि इस प्रश्न से यह मालूम हुग्रा कि ग्राजकल लडके-लड़किया क्या सोच रहे है, उनके विचारो का रुख किस ग्रोर है। इस प्रश्न के लिए उन्होने उन लडकियो को वधाई दी।

हमारा मत्र 'जय जगत्'

प्रश्न यह था ग्राप कहते है कि ग्रामदान से 'मै-मेरा' की भावना जाती रहेगी ग्रौर यह ठीक भी है। लेकिन उसके वदले 'हम-हमारे' भावना ग्रायेगी न, तो क्या फर्क हुग्रा? क्या इससे एक गाव का दूसरे गाव से विरोध नही होगा? झगडा नही होगा?

विनोवा—प्रश्न वडा मार्मिक हे। पर इस प्रकार का विरोध नही होगा, क्योकि हमारा मन्त्र क्या है? जय जगत्! सर्वोदय हमारा घ्येय है। उसमे सकीर्णता तथा विरोध के लिए गुजाइश नही। विशालता, उदारता ग्रौर सहकार ही हमारी नीति रहेगी। एक गाव दूसरे की मदद करेगा, उसे भी ग्रागे बढायेगा। 'एकमेका साह्य करूं, अवघे धरूं सुपंथ।' ग्रर्थात् एक-दूसरे की सहायता करेंगे, सव मिलकर सन्मार्ग ग्रपनायेगे। यह कहकर सव चलेगे।

: ७ :

नक्षत्र-दर्शन

स्वाति और मोती

लडकियो के सब सवालो के जवाव देने के वाद विनोबा ने उन्हे तारकाओ के दर्शन कराये, उनकी जानकारी दी। स्वाति नक्षत्र दिखाकर वह वोले—जव सूर्य इस नक्षत्र मे रहता है, तव जो वर्षा होती है, उससे, माना जाता है, मोती तैयार होते हैं। लेकिन यह गलत है। मोती तैयार होते हैं कालवो से।

स्वाति के पास जो ग्रह है वह गुरु है। ग्रहो मे वह सवसे वड़ा है। उसकी अपेक्षा शुक्र तेज मे अधिक है। आकाश मे वह प्रथम क्रमाक का है। वह कभी सुवह, कभी शाम को निकलता है। आकाश के मध्य मे वह अक्सर नही दिखाई देता।

सप्तर्षि मे भारत-दर्शन

वाद मे सप्तर्षि की तरफ मुखातिव होकर वोले—तुमने हिन्दुस्तान का नक्शा देखा है न ? देखो ये चार तारकाए चौकोर बनाती हैं। वह है काश्मीर, और ये तीन तारकाए नेपाल आदि का हिस्सा है। है न यह हिन्दुस्तान की आकृति ?

अरुधती और छ कृत्तिकाए

उन तीन तारकाओ मे वीच की तारका वसिष्ठ की है। उसके पास एक छोटी तारका है, वह है अरुधती की। अन्य छ ऋषियो की पत्निया उनके पास नही है। यह अरुधती सदा वसिष्ठ के पास ही रहती है। उन छहो का अगूरो के गुच्छे के समान गुच्छा दिखाई देता है न ? वह है कृत्तिका नक्षत्र।

ध्रुव चल है

सप्तर्षि-समूह के पहले दो तारो मे से तिरछी रेखा नीचे की ओर खीचने

पर ध्रुव से जा मिलती है। वह देखो ध्रुव ! वह हिलता नही, इसलिए उसे ध्रुव कहते हैं। लेकिन यह तारा दो इच घूमता हे। ध्रुव की कहानी तुम जानती ही हो।

सुबह जल्दी उठो

लडकियो से पूछा—"तुम सुबह कितने वजे उठती हो ?"

"५ वजे।"

"अच्छा, सोती कितने वजे हो ?"

"१०-१०॥ वजे।"

"यानी तुम्हे ६॥ घटे नीद मिलती है। देर से सोना ठीक नही। नौ वजे सो जाना चाहिए।"

"पढाई पूरी नही होती हे।"

"सवेरे और भी जल्दी उठ जाओ। ४ वजे उठ गई तो ७ घटे नीद मिलेगी। आज तुम्हे ६॥ घटे नीद मिलती है। सिवा इसके सुबह की पढाई अच्छी होती है। दुनिया के वडे लेखको ने अपना लेखन सुबह ही किया है। 'गीताई' सुबह ही लिखी गई है। सुबह जल्दी उठने से वहुत लाभ होते हैं।"

इसके वाद लडकिया विदा की गई।

दोड्डमंगलगेरे के मार्ग पर
१-१२-५७

: ८ :

डेनियल के प्रश्न

समर्पण-शक्ति

डेनियल—समर्पण-शक्ति वढनी चाहिए। वह कैसे वढेगी ?

विनोवा—समर्पण एक धूर्तता है। थोडा देना और सव ले लेना। अपने पास जो कुछ थोडा-सा रहता है उसे दे डालने पर सव अपना ही वन

जाता है। बूद सागर मे समा जाने पर स्वय सागर बन जाती है।

पाप-भीरुता

डेनियल—पाप को कैसे टाले ?

विनोबा—'बोलो जाता बरळ करिसी तें नीट।' अर्थात—'जब हम बेकार बातें बकते है तब उन्हे तुम सुधार लेते हो।' ईश्वर का भरोसा इस प्रकार चाहिए। तो भी पाप-भीरु रहना ही मध्यम मार्ग है, जो कि अधिक अच्छा है। पाप-भीरुता बरतने से पाप नही रहेगा। करते-करते कर्म इतना स्वाभाविक बन जाता है कि वह कर्म रहता ही नही।

शहर मे शाति-सेना का सगठन

डेनियल—क्या शहरो मे कार्य नही होना चाहिए ?

विनोबा—मेरे मन मे विचार है कि पूरब मे कटक, पश्चिम मे बबई, दक्षिण मे बेगलूर और उत्तर मे काशी कार्य के लिए चुने जाय। वास्तव मे पूरब मे कलकत्ता को ही चुनना चाहिए, पर वहा भक्तिमार्ग का ही प्रचलन रहेगा। युवा लोग तो हिंसा मे ही दीक्षित है। भक्ति का सगठन नही हो सकता। भूदान का कार्य सामाजिक है। काशी मे आपका दफ्तर है। वहा सभी भाषाओ के विद्यार्थी रहा करते हैं। बबई मे भी इतनी विविधता नही है। ये विद्यार्थी बडी भावना लेकर आते हैं। काशी पाच हजार बरस का पुराना नगर है। दिल्ली मे तो राज्यकर्ता बस गये है। कम-से-कम चार शहरो मे शाति-सेना स्थापित करने का मेरा इरादा है। कटक के बारे मे मुझे चिंता नही। रमादेवी के हाथो यह काम सौंप दिया गया है। कटक मे शातिसेना का सगठन आसान मालूम होता है। बबई रह जाती है। वहा किसे सौंप दिया जाय ? नारायण देसाई से कहा है, बीच-बीच मे इस तरफ ध्यान देने के लिए। बबई मे ५२ तहसील हैं, तो कम-से-कम ५२ कार्यकर्ता चाहिए। आज दस-बारह है।

दोड्डमगलगेरे
१-१२-५७

: ६ :

नागरी लिपि और विभिन्न भाषाएं

एक लिपि से लाभ

विनोबा—गुजराती 'गीता-प्रवचन' नागरी लिपि मे छपवाना है। किसीने सदेह प्रकट किया कि इससे उसकी खपत घट जायगी। मैंने कहा—नही-नही, खूब चलेगी। अनेक भाषाओ की एक ही लिपि रहने से वडा लाभ होता है। जर्मन भाषा मै अठारह दिन मे सीख गया, क्योकि उसकी लिपि रोमन है। इतने थोडे अर्से मे दूसरी कोई भी भाषा मै नही सीख पाया।

'गीता-रहस्य' का तमिल अनुवाद

'गीता रहस्य' का प्रकाशन १६१५ मे हुआ। उसका तमिल अनुवाद १६५५ मे प्रकाशित हुआ और वह भी बगला अनुवाद से! यूरोप मे ऐसा नही होता। किसी महत्वपूर्ण पुस्तक का अनुवाद तुरत ही किया जाता है।

लिपि और शिरोरेखा

गुजराती लिपि मे शिरोरेखा नही लगाते। मै इसे अच्छा मानता हू। पर हिन्दीवाले वहुसख्य है, उन्हे कौन समझावे। इसलिए मैंने दोनो रखने की तरकीब सोची है। छपाई मे शिरोरेखा रखी जाय। लिखावट उसके विना रहे।

गुजराती की भाति उडिया 'गीता-प्रवचन' भी नागरी लिपि मे छप रही है।

पपा याने हपी

यह वेल्लारी जिला है। इसमे पपा नाम के सरोवर है। भगवान् राम वहा पधारे थे। 'पपा' से 'हपी' परिणत हुआ है। गुजराती मे जिस प्रकार 'स' का 'ह' वनता है, 'सवारे' को 'हवारे' कहते है, उसी प्रकार इधर भी कन्नड मे 'प' का 'ह' हो जाता है। 'पपा' से 'हपा' और बाद मे 'हपी'।

इस जिले मे हमने प्रवेश किया है। यह है हनुमान् का जिला, सवेरे यहा के लोगो ने बताया है।

दोड्डुमगलगेरे
१-१२-५७

: १० :

न किंचिदपि चिन्तयेत्

राम—'न किंचिदपि चिन्तयेत्', बिल्कुल चिन्तन न करते हुए चुप रहने की स्थिति का अनुभव कैसे किया जायगा ? कितनी देर तक इस अवस्था मे रहा जाय ?

विनोबा—यह स्थिति कितनी देर तक रहे ? 'बिल्कुल चिन्तन न करे' यह निर्देश दिनभर के लिए नही दिया गया है। चाहे जब मन को निर्विचार करना सभव हो। गाढी नीद मे मिलनेवाला सुख प्राप्त होना चाहिए। निद्रा मे जो सुख मिलता है उसे अगर न पाया जाय तो काम बनेगा नही। उससे प्रभूत शक्ति प्राप्त होती है। निद्रा से यह मिलती है। उससे अधिक समाधि से प्राप्त होती है।

१९३८ मे मै बहुत ही क्षीण होगया था। इसके कारण पौनार जाकर रहा। जाते-जाते पुल पर ही निश्चय किया कि सारी चिन्ता त्याग दी। वहा एक-एक घटा शून्य मनोवस्था मे लेटा रहता था। दो-चार किताबे केवल साथ ली थी। चितारहित मन, योग्य आहार-विहार और व्यायाम—यह रहा वहा का कार्य-क्रम। फल यह हुआ कि हर महीने चार पौड वजन बढता गया। इस प्रकार ३६ पौड वजन बढ गया। जो खाता, हजम हो जाता, क्योकि विकार तो कुछ भी था नही, और विचार भी पास फटकता नही था। 'न किंचिदपि चिन्तयेत्' के कारण स्वाधीन रहा। जिसके पास २५ एकड जमीन होती है, वह भी उसकी चिन्ता से परेशान हो उसका गुलाम बन जाता है। लेकिन आदमी, अपने मन को निर्विचार, चितामुक्त कर सकता है, तब वह स्वाधीन बनता है। 'जब चाहो तब खोलो किवडा' इस स्वरूप

की स्वाधीनता मिलती है। सब बातो से, सब विचारो से अपनेको अलग करने की शक्ति प्राप्त करनी चाहिए। जब यह शक्ति आत्मसात् हो जाती है तब मनुष्य अपने मूल रूप को पहुच जाता है। नीद मे भी वैसा होता है, पर तब अज्ञान रहता है। मूल रूप को पहुंच जाने पर शक्ति की कमी नही। निंदा-स्तुति आदि द्वद्वो के आघातो का असर नही होता। वहा से अटूट धैर्य मिलता है। उसमे चौबीस घटे रहने की बात नही उठती। जब उस स्थिति मे पैठना हो तब पैठा जा सके'।

कलचीकेरी
२-१२-५७

: ११ :

पुरानी स्मृतियां

दाल मे दुगुना नमक

विनोबा-मा स्तोत्र पाठ करते हुए या भजन गुनगुनाते हुए रसोई पकाती थी। कभी-कभी दाल मे नमक दिया या नही, इसकी उसे सुधि नही रहती थी। फिर वह नमक डाल देती। पहले नमक नही दिया, इस धारणा से फिर उतना नमक मिला देती जितना कि पहले देना होता था। इससे दाल मे ज्यादा नमक पड़ता। मुझे कॉलेज जाना होता था, इसलिए मै पहले खाने बैठता। पिताजी बाद मे खाते। लेकिन उस समय अन्याय विषयो के अध्ययन मे मै इतना मशगूल रहा करता कि दाल मे बिल्कुल नमक नही पडा या दुगुना पड गया, इसका भान मुझे नही होता था। भोजन खतम करके मै चला जाता। बाद मे जब पिताजी खाने बैठते तब मां से कहते,„ कितना नमक डाला है दाल मे ? सब लोगो के भोजन के उपरात मा भोजन करती। उसे और लोगो की तुलना मे ज्यादा नमक लगता। पर वह दाल दुगुनी नमकीन देखकर उसे दु ख होता। उसे लगता—'कितना नमकीन कर दिया मैने इस दाल को !' जब मै कॉलेज से घर लौट आता तब वह मुझसे पूछती—'विन्या, दाल मे

दुगुना नमक पड गया था, तुमने क्यो नही बताया ?' मै जवाव देता—'मुझे महसूस हो तव न मै कहता ? मै कुछ भी नही समझ पाया।'

... . .

हमारा शाम का टहलना

शाम को हम टहलने जाते। सुदूर एक टीले पर बैठकर चर्चा चलाते। सूर्यास्त देखते। सूर्यविव नीचे डूव जाता। अनतर संध्याराग का लोप होता। पक्षियो की चहचहाहट वद हो जाती। आदमियो की आवाजे नही सुनाई देती थी। फिर पहले एक सितारा दीख पडता, तुरत और तारे दिखाई देने लगते। आठ वज जाते। तव हम लौट पडते। घर आते-आते ८।। वज जाते। मा वाट जोहती रहती और सव भोजन कर चुकते।

. . .

अग्रेजी निवध

एक वार हमारे कक्षाव्यापक ने—'विवाह-विधि का वर्णन' (A description of a marriage ceremony) पर अग्रेजी मे निवध लिखने को कहा। पर चूकि मै कभी शादी-ब्याह मे नही गया था, उसकी विधि कैसे जानता। पर निबध लिख दिया। एक युवक ने ब्याह किया। उससे वह कैसे दुखी हुआ तथा औरो को भी उसने कैसे दुखी किया इसका एक काल्पनिक चित्र मैने खीचा। शिक्षक ने लिखा—'यद्यपि सवाल का जवाव इसमे नही, तो भी प्रतिभा की चमक दीखती है।' १० मे से ७ अंक दिये।

ताने के कारण वाल-वाल वचा

मोघेजी घर छोडकर मेरे पास आश्रम मे आये, इसलिए उनके पिताजी मुझपर वहुत रुष्ट थे। वह कहते—'विनोबा ने उसे 'किडनप' किया (भगाया) है। उन्हे मैने एक पत्र लिखा। उसमे लिखा था कि अदालत मे यह सावित नही हो सकेगा कि मैने उन्हे भगाया। वह उम्र मे मुझसे पाच साल वडे थे। उन्हे मै 'किडनप' कैसे करता ? उम्र मे वडा व्यक्ति अगर स्त्री हो तो माना जा सकेगा कि उस स्त्री को वह पुरुष किडनॅप करेगा। पर प्रस्तुत उदाहरण मे

वह भी वात नही। इसलिए आप मुझपर यह इलजाम नही लगा सकते। लेकिन उनका गुस्सा बना ही रहा। मोघेजी घर नही जाते थे। उन्होने पिताजी को लिखा कि वह एक वार आकर आश्रम देख लें। उस समय आज की वजाजवाडी मे घास के बंगले मे हम रहते थे। जव वह आये तव हम 'पाजण' कर रहे थे। उन्होने अपनी लाठी जोर से ताने पर दे मारी। सैकडो तार टूट गये। मैं ताने के दूसरे छोर पर था। वह मेरी ओर आये। पर मुझपर गुस्सा नही उतारा। कुछ बोले ही नही। वह अपना गुस्सा ताने पर उतार चुके थे। शाम को मोघेजी मेरे पास आये और बोले—अच्छा ही हुआ कि तार टूट गये। अगर आप पहले मिलते तो उनकी लाठी आपके सिर पर बरस पडती।

.. ..

जेल मे मेरा दु ख

हम थे सिवनी जेल मे। मैंने इन्कार किया था नातेदारो और अन्यो मे फर्क करने का। इस वजह से मैं किसीको भी पत्र नही भेजता था। तीन साल गुजर चुके थे। हमेशा आनद मे रहता। एक दिन मालूम नही क्या सोचकर जेलर मेरे पास आकर बडी देर तक बैठा रहा और बोला, "क्या आपके जीवन मे एक भी दु ख नही ?" मैं बोला, "है, क्यो नही ? पर वह क्या है, आप ही पहचानिये। सात दिन की मुहलत देता हू।" वह एक हफ्ते के वाद आया और बोला, "मुझे तो कोई दुःख नही दीख पडता। आप ही वताइये न।" मैंने कहा, "यहा जेल मे सूर्योदय तथा सूर्यास्त नही नजर आते। यही मेरा दु ख है।"

कलचीकेरी
२-१२-५७

: १२ :

मेरा ध्यान और ब्रह्मचर्य का स्वरूप

मैं—आप कहते है कि हर रोज अतरात्मा के मगल गुणो—सत्य, प्रेम,

करुणा आदि का ध्यान किया जाय। हम जानना चाहते है कि आप यह ध्यान किस प्रकार करते है ?

विनोबा---मै मौन धारण करता हू । किसी भी प्रकार का चिंतन नही करता। उस शाति मे से सत्य, प्रेम, करुणा आप-ही-आप उमड आते है। सब मगल गुणो मे इन्ही तीन गुणो को मै श्रेष्ठ मानता हू। ब्रह्मचर्य, निर्भयता, अहिंसा आदि गुण इन्हीमे अतर्भुक्त है।

ब्रह्मचर्य करुणामूलक

ब्रह्मचर्य के मानी कठोर सयम, कठोर अनुशासन है, तो उसका अतर्भाव करुणा मे कैसे ? लेकिन मै उसे करुणामूलक ही मानता हू। जो सहज ब्रह्मचारी है, वे सब करुणा-प्रधान है। अन्य कारणो से भी ब्रह्मचर्य साधना करनेवाले है। कोई अध्ययन के लिए, कोई पितृवचन पालन के हेतु, कोई देश-सेवा के वास्ते कठोर अनुशासन मे रहकर ब्रह्मचर्य-पालन करते है। वे सब बडे और आदरणीय है। लेकिन मै तो ब्रह्मचर्य को करुणामूलक मानता हू। जब मै पवनार मे रहता था, उन दिनो एक बार जमनालालजी मेरे पास आये और बोले, "चलिये, लक्ष्मीनारायण मदिर मे कृष्णजन्म देखने चले।" मै वहा गया। देवकी लेटी हुई थी। उसका पेट फूला हुआ था। सास लेने मे तकलीफ होती थी। वह वेदनाए अनुभव कर रही थी। यह सब बडी खूबी से उस गुडिया मे प्रदर्शित किया गया था। पर उसे देखकर मुझे यकीन हुआ कि देव अजन्मा है। जन्म लेकर वह ऐसा दु ख अपनी माता को क्यो देने लगा ? मै पवनार लौट आया और आश्रम मे आने पर गीता का चौथा अध्याय पढ गया

अजोऽपि सन् अव्ययात्मा भूताना ईश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृति स्वा अधिष्ठाय सभवाम्यात्म-मायया ॥

यह श्लोक उस अध्याय मे है। वह अजन्मा है। जनन जैसी दुखदायी क्रिया वह क्यो कर करेगा ? माता को भी दु ख और बालक के लिए भी दु ख-ही-दु ख। इसलिए ब्रह्मचर्य की प्रेरणा करुणा मे है। मुझे लोग कठोर मानते है और उसमे तथ्य भी है। उनका वह अनुभव सही है। कहते है कि अब मै जरा बदल गया हू। लेकिन वास्तव मे पहले से ही मै करुणा से भरा

हुआ हू । अपने जैसा करुणापूर्ण व्यक्ति मैंने और नही देखा । मै घर पर था । मेरे दोस्त चाय पीते और अन्य बाते भी करते । उनपर मैंने कठोर प्रहार किये है । पर उन्होने चाय नही त्यागी । फिर भी मैंने उनका त्याग नही किया और वे मुझसे इतना प्यार करते है कि वे अपनी पत्नी, मां, बाप, नातेदारो का त्याग कर मेरे पास रहे है । मेरे भाइयो की भी वही कथा है । मेरे साबरमती जाने पर घर पर उनसे नही रहा गया । घर पर सब बातो की अनुकूलता रही । इसके बावजूद वे मेरे पास आये । उसका कारण है मेरी करुणाशीलता । गृहस्थी करनेवाले को दुनिया दयालु, कृपालु मानती है और ब्रह्मचारियो को कठोर । ज्ञानदेव ने भी ब्रह्मचर्यादि साधनो को कठोर बताया है 'ब्रह्मचर्यादि साधनें खरपूसें', फिर भी मै मानता हू कि ब्रह्मचर्य करुणामय है । अनुभव के बल पर कहता हूं ।

बुद्ध को करुणासिधु कहा गया है । शकराचार्य की भी प्रशसा 'करुणालय' कहकर की है— 'श्रुति-स्मृति-पुराणानां आलयं करुणालयम् । नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम् ।" बुद्ध ने भी कहा है—"को नु हासो किमानदो निच्च पज्जलिते सति ।" यह सब मैने पढा बहुत बाद मे, पर बचपन मे ही यह बात मुझे हृदयगम हो गई थी । रात को दरवाजे के सामने से बाराते जाया करती थी । तब बैंड की ध्वनि सुनाई देती और मै नीद से जाग पडता । मुझे वह बारात श्मशान-यात्रा के जैसी लगती । क्या मै नही जानता था कि वे बाराते है ? तो भी वे अत्ययात्रा-सी लगती थी ।

अरसीकेरी
३-१२-५७

: १३ :

सूर्योपस्थान

इधर दस-पन्द्रह दिन हुए सूर्योपस्थान हुआ करता है । सवेरे ५ बजे पद-यात्रा शुरू होती है । सूर्योदय के समय विनोबाजी खेत मे सूर्याभिमुख होकर खडे हो जाते है और—

सत्येन लभ्यस्त तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्त' शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
य पश्यन्ति यतय' क्षीणदोषा' ॥१॥
सत्यमेव जयते नानृत
सत्येन पन्था विततो देवयान ।
येनाक्रमन्ति ऋषयो ह्याप्तकामाः
यत्र तत् सत्यस्य परम निधानम् ॥२॥

ये दो श्लोक कहकर सूर्य-बिंब के ऊपर आने तक ध्यानस्थ रहते है। उसके अनतर—

पूर्ण अद पूर्ण इदं। पूर्णात् पूर्ण उद् अच्यते।
पूर्णस्य पूर्ण आदाय। पूर्ण एव अवशिष्यते॥

इस शातिमत्र के पठन से उपस्थान सपन्न होता है।

पहले मार्ग मे पाठ पढाया करते थे। अब यह सूर्योपस्थान हुआ करता है।

यह उपस्थान सूर्य का नही है। जिसने सूर्यचद्रादि का निर्माण किया उस परमेश्वर का है। परम सत्य का उपस्थान है। भूलना नही चाहिए कि सूर्य उसका प्रतीक है।

"उद् वय तमस. परि, ज्योति' पश्यन्त उत्तर, (स्वः पश्यन्त उत्तर) देव देवत्रा सूर्य अगन्म, ज्योतिर् उत्तम इति॥"

आरसीकेरी
३-१२-५७

: १४ :

भूदान की कहानी

प्राय सध्या के प्रवचन के बाद विनोबा के साथ हम लोग घूमने जाते

है। आज भी गये थे। रास्ते के पास के खेत मे रास्ते से दूर विनोबा बैठ गये और उनके इर्द-गिर्द हम भी।

पीछे पडना चाहिए

कातिभाई बोले, "आपका व्याख्यान सुनकर लोगो के दिल मे भावनाए उमड पडती है। उनसे लाभ उठाना होगा। इसलिए आपके जाने के बाद तुरत लोगो के पास जाकर दान-पत्र भरवा लेने चाहिए, इससे बहुत काम हो जायगा। जिस प्रकार आपकी अगाडी की टोली होती है, वैसी ही एक पिछाडी की भी चाहिए। बबई मे जयप्रकाशजी के भाषण के बाद लोगो मे भावना की जागृति होती थी और दूसरे दिन उनके पास पहुचने पर वे दानपत्र भर देते थे। अगर हम व्याख्यान के दस-पद्रह दिन बाद गये, तो काम नही बनता। यहा भी यही करना चाहिए।

उत्तर प्रदेश मे पहले चुनाव के समय

विनोबा—पर आदमी कहा है काम के लिए? यहा मेरे साथ लोग है, यही बहुत समझो, आगे और पीछे के कार्यकर्ताओ की बात तो दूर ही है। उत्तर प्रदेश मे प्रथम चुनाव के दिनो मे मै घूमता था। सब लोग इसी काम मे लगे हुए थे। उस वक्त भूदान की सभा अकेले विनोबा की ही भारतभर मे हुआ करती थी। आगे-पीछे जानेवालो की बात ही क्या, साथ मे भी कोई नही था। मेरे साथ करणभाई थे। उन्होने तो इस क्राति-कार्य मे ही रहने का निश्चय किया था। खुद उनको चुनाव के लिए खडा नही रहना था, लेकिन कृपालानीजी के लिए प्रचार करना उनके जिम्मे आ गया था। गुरु का इतना ऋण तो मान ही लेना चाहिए न? उन्होने पन्द्रह दिन की रुखसत चाही और मैने उन्हे दे दी। कोई साथी नही था, मै अकेला ही घूम रहा था। तो भी स्वागत के लिए तथा सभा मे लोग इकट्ठे होते थे। पर काम कहने लायक नही हो रहा था। ऐसी हालत मे दो मुसलमान भाई मेरे पास आये। वे या तो भाई-भाई थे, या एक-दूसरे के रिश्तेदार थे। उनके साथ भूदान और कुरान के बारे मे खुले दिल से चर्चा हुई। उन्होने अपनी ११ हजार एकड भूमि दान मे देने का इरादा जाहिर किया। उस आम चुनाव के समय मे यह खबर अख-

वार मे छपी। लोगो को उसके वारे मे सानद आश्चर्य लगा। इसमे अचरज ही क्या था ? लेकिन धर्मराज की भाति, जिनके साथ मे एक कुत्ता था, मेरे कोई साथी न था। दानपत्र भी वडी तादाद मे नही मिल रहे थे। यह स्थिति उसके पहले और वाद भी अनेक वार महसूस करनी पडी।

प्रथम पष्ठाश दान

इसी वीच मेरी ओर तमिलनाड के जगन्नाथन् आये थे। उन्होने पत्र लिखकर पूछा था—"क्या मै आ जाऊ ?" मैने उन्हे आने को लिखा था, जिसके अनुसार वह आये थे। वह मेरे साथ चार-छ महीने रहे। उस वक्त मुझे कभी १० एकड, कभी १२ इस प्रकार जमीन मिलती थी। वह सव कुछ देख रहे थे। एक दिन ज़मीन दान मे मिलने के कोई आसार नज़र नही आ रहे थे। मेरे पास वैठे हुए एक आदमी से मैने पूछा, "तुम्ही क्यो नही देते जमीन ? कितनी है तुम्हारे पास ?" वह वोला, "एक एकड। उसमे से आपको क्या दे दू ? मेरे पाच लडके है।" मै वोला, "समझो तुम्हारे छठा लडका भी है। उसे तुम खिलाओगे या नही ? मुझे ही वह छठा लडका मानकर छठा हिस्सा दे दो। उसने मान लिया और दो गट्ठा जमीन दे दी। यही थी एक गरीव किसान से प्राप्त पहली जमीन। इस प्रकार उस दिन फाका टल गया। अन्य वडे-वडे किसान तथा जमीदार दूर खडे थे। वे देखते ही रह गये।

तेलगाना मे

शुरू-शुरू मे तेलगाना मे भी इसी प्रकार १०-१२ एकड जमीन हर रोज मिल जाया करती। कोई साथी नही था। तीनसौ लोग कत्ल किय गए थे। उस प्रदेश मे कौन देगा साथ ? पर उस समय मै आठ-आठ घटे काम करता रहता, आज की तरह पडाव पहुचने पर अपने कमरे मे नही वैठा करता था। इसी कारण तेलगाना मे १८ हजार एकड जमीन मिल गई।

विनोवा की अदालत

मै वोला—तेलगाना मे अपने न्यायदान का काम किया, जो कि एक

खास बात-सी मुझे प्रतीत होती है। अन्यत्र कही वैसा नही हुआ।

विनोबा—दोनो पक्षो को सामने बुलाकर मै कहा करता कि विनोबा की कोर्ट मे दूसरे का अपराध कहना नही होता, केवल अपना किया हुआ कहना होता है। तब हरएक अपना अपराध कबूल किया करता। पर बीच ही मे अगर कोई कहता कि 'उसने ऐसा किया,' मै झट उसे टोक देता। और फिर उसमे कुछ कम-ज्यादा करके फैसला किया करता। सरकारी अधिकारी उसे लिख लेते और उसके अनुसार कागजात तैयार कर लेते। इस प्रकार हमारी अदालत काम करती।

बड़ी सख्या का जादू

बाद मे उत्तर प्रदेश से बिहार मे दाखिल हुआ। उत्तर प्रदेश मे ५ लाख एकड भूमि मिल गई थी। बिहार मे प्रवेश करने से पहले मैने कहा था कि बिहार मे चार लाख एकड जमीन मिलनी चाहिए। बिहार के लोगो ने बताया कि बिहार मे उत्तर प्रदेश की अपेक्षा जमीन कम है, यह माग घटानी होगी। मैने कहा—माग हरगिज कम नही होगी, नही तो विध्यप्रदेश की पदयात्रा का सकल्प तय हो रहा है, उधर ही चल निकलेगे। तब बिहारी लोगो ने सोचा—उन्हे आने तो दीजिये, मिल ही जायगी कई लाख एकड जमीन। और इस विचार से माग कबूल की। हम बिहार मे प्रवेश कर गये। बुद्ध-जयती के दिन जब राका के महाराजा ने पूछा—"कितनी है आप-की माग," तब मैने कहा—परती जमीन सब और उपजाऊ जमीन का छठा हिस्सा दीजिये। उसके अनुसार उन्होने परती जमीन एक लाख एकड तथा उपजाऊ उत्तम जमीन का छठा हिस्सा याने २ हजार एकड दान मे दे दी। तब मैने घोषित किया कि बिहार मे मुझे ५० लाख एकड जमीन मिलनी चाहिए। लोगो के कहने से घटाकर वह माग ४० लाख एकड कर दी। बाद मे वैजनाथबाबू आये। उन्होने जिलावार आकडे बताकर कहा कि यह माग ज्यादा है। तब हिसाब करके ३२ लाख की माग निश्चित की। लेकिन बिहार की २७ महीने की पदयात्रा मे २२ लाख एकड जमीन मिली। बड़ी सख्या का यह जादू है। मै बात करता था ५० लाख की, कार्यकर्ता लोग भी बडी सख्या की माग पेश किया करते। इसीका परिणाम यह हुआ

कि बिहार मे २२-लाख एकड भूमि--सबसे अधिक भूमि--प्राप्त हुई। ३२ लाख का सकल्प अधूरा रह गया, और मैं अब बिहार छोडने को था। इसका वहा के लोगो को बडा रज हुआ। लेकिन उसके लिए मुझे बिहार मे ही रोक रखना कार्य में अडगा डालने जैसा होता। इसलिए बाकी संकल्प पूरा करने तथा प्राप्त २२ लाख एकड का बटवारा करने की जिम्मेदारी जयप्रकाशजी ने अपने ऊपर ले ली और मुझे मुक्त किया।

उडीसा मे एक हजार ग्राम-दान

बिहार से बगाल होकर मैं उडीसा मे प्रविष्ट हुआ। वहा सैकडो ग्रामदान पहले ही मिल गये थे, तो भी गजम जिले मे प्रवेश करने के समय तक काम बताने लायक नही हो रहा था। नवबाबू, गोपबाबू, रमादेवी, मालतीदेवी जैसे लोग कष्ट उठा रहे थे। लेकिन कौन जाने क्या हुआ, मेरे प्रवेश के बाद काम आगे बढ नही रहा था। गजम से काम फिर से बढने लगा और कोरापुट मे तो एक हजार ग्रामदान मिले।

तामिलनाड मे कार्य असभव नही

इन ग्रामदानो की कहानी जब जगन्नाथन् के कानो तक पहुची, तब उसने मुझे पत्र लिखा कि यहा तामिलनाड मे ग्रामदान मिलना बिल्कुल असभव है। पहले जब गगा-किनारे की सुदर जमीन मिली तब वह बोला था कि तामिलनाड मे कावेरी-किनारे की जमीन, जो गगातीरस्थ भूमि की भाति ४ हजार से लेकर ७ हजार तक फी एकड मूल्यवाली है, मिलना सभव नही। अब वह ग्रामदान असभव बताता था। मैंने उसे लिखा--तामिलनाड मे ग्रामदान अवश्य मिलेगे। इसके कारण है दो (१) सपूर्ण तमिल साहित्य मे जमीन की मालकियत नाम की वस्तु नही पाई जाती, और (२) सब गाव मदुरा की भाति मदिर के चारो ओर बस गया है, जैसे इधर वह बाजार के चारो ओर बस गया है। मदिर को केन्द्र बनाया गया है, इसका अर्थ है देवता ही ग्राम का स्वामी है। सारा गाव, सारी जमीन उसकी है। वह राजाजी के पास गया था, अपने भूदान-कार्य में आशीर्वाद मागने। पर उन्होने कहा--तामिलनाड मे भूमि मिलना, कावेरी

किनारे की उपजाऊ भूमि मिलना, मुझे असभव-सा लगता है। उत्तर की बात ही अलग है। उधर बाबा का रौब जम गया है, पर इधर आबादी घनी होने के कारण काम नही बनेगा। वह गया था असीस मागने, उसे यह असीस मिला!

तामिलनाड की चट्टान

आध्र होकर मै तामिलनाड गया, पर वहा शुरू के आठ-नौ महीने कुछ फल नजर नही आया। कोयम्बटूर सेलम मे तो हद होगई। मेरी यात्रा दिन मे दो बार हुआ करती। व्याख्यान बहुत हुआ करते। लोग कहते, आपके ये व्याख्यान देहाती लोग समझ नही सकते। किनके लिए आप व्याख्यान दे रहे है? मै कहता—वे अखिल भारत के लिए है। कुरल, माणिक्यवाचकर आदि लेखको का अध्ययन मैने जारी रखा था। उनके वचन, उनकी सूक्तिया उद्धृत करके मै व्याख्यान देता था। लेकिन कोई फल हाथ नही लगता था। सेलम तो राजाजी का जिला, नाम के अनुसार चट्टान, सूखा पत्थर ही ठहरा। उसके बाद इतने दिनो की तपस्या फलद्रूप होगई। मदुराई जिले मे गाधीग्राम मे हम ठहरे थे। जी रामचद्रन् और मडली के सामने मै एक बार बोला, "मैने तीस-तीस साल रचनात्मक कार्य किया, बैठे-बैठे। आप भी रचनात्मक कार्य अपनी सस्था मे कर रहे है। मुझे बताइये कि यह जो मै घुमक्कडी करके प्रचार कर रहा हू, उसे बद कर दू या जारी रखू? आपके कहे अनुसार करूगा।" इसका असर उनपर पडा और प्रार्थना के बाद जी रामचन्द्रन् ने मेरे पास चिट्ठी भेजी—आपका भूदान-कार्य ही योग्य है। हृदय को तो वह कबका छू गया है, लेकिन बुद्धि नही मान रही थी। अब मै उसे मान गया हू और हम यह कार्य आगे बढायगे।

केरल मे ढाईसौ ग्रामदान

इसके बाद केरल मे प्रवेश किया, पर वहा भी पालघाट पहुचने तक कोई काम कहने योग्य नही हुआ। केरल मे बैठते ही मैने पूरे केरल के दान की बात कह दी। लोग कहते—कम्यूनिस्ट शासन है, यहा बाबा की

दाल नही गलेगी। शुरू मे वही आसार नजर आये। लेकिन आगे चलकर परिवर्तन हुआ। केरल मे भी ढाईसौ ग्रामदान प्राप्त हुए।

कर्नाटक का नाटक

उसके अनतर यात्रा कर्नाटक मे आई है। यहा कार्यकर्ताओ का अभाव है। कुछ भी काम नही होता। धारवाड तक इन्तजार करूगा। उसके बाद अगर काम मे जोश आ गया तो ठीक, नही तो तेलगाना के समान खुद ही कमर कस लेने की सोच रहा हू। यहा बेंगलूर मे आश्रम की स्थापना करनी है। यहा का काम जबतक ठीक नही होगा, दक्षिण छोड जाने का नाम नही लूगा। इसीको हमारा वाटरलू समझिये।

: १४ :

संस्कृत भाषा और गीतोपनिषद्-पाठ

मै—विनोबाजी, शाम को जो स्थितप्रज्ञ-विषयक श्लोक बोले जाते है उनमे 'आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठम्' बोला जाता है, उसके बदले 'आपूर्यमाणं अचल प्रतिष्ठम्' ऐसा पदच्छेद करके बोला जाय। इससे छद भी सुरूप होगा और अर्थबोध भी सुगम होगा।

दूसरी बात, प्रात काल हम जो ईशोपनिषद् का पाठ करते है उसमे न पद-पाठ पूर्णतया रहता है न वाक्य-पाठ। इसके बारे मे कुछ व्याख्या चाहिए।

धातूपसर्गो का विलगीकरण

उपसर्गों को तोडकर पढने का तरीका जो आपने अपनाया है, वह उन्हे विशेष महत्त्व देने की दृष्टि से उचित ही है। हा, उसके कारण छद गायब हो जाता है। पर जब छदोबद्ध रचना को गद्यवत् बोला जाता है तब ऐसा करने मे बाधा न रहे।

गद्य गेय, पद्य पाठ्य

मराठी ईशोपनिषद् गद्य होते हुए भी पद्यवत् बोला जाता है, और मूल सस्कृत छदोबद्ध होते हुए भी गद्यवत् बोला जाता है, यह बडी मजेदार बात है आपकी।

विनोबा—स्थितप्रज्ञ-विषयक सस्कृत श्लोक चरणश बोलना हो तो एक चरण दूसरे चरण से अलग ही बोला जाय, सधि न की जाय। परतु चरणातर्गत बदल करने से अनवस्थाप्रसग आ पडेगा। कोई भी कैसा भी बोलेगा और किन्ही दो के पठन मे मेल नही रहेगा।

विवक्षा-पाठ

मैं—यह नही होगा। एक विवक्षा-पाठ बनाकर वही सब बोलेगे। यह हो सकता है। उससे छद सुबद्ध होगा और अर्थबोध भी सुलभ।

पद-पाठ भाष्य का ही एक तरीका

विनोबा—लेकिन यह करने मे सहिता खडित होगी। पद-पाठ के मानी भी सहिता का भाष्य करना है। पदच्छेद का ढग कौन तय करेगा? वेद का जो पद-पाठ है, उसे मानना ही चाहिए, सो बात नही। वह ऋषिदृष्ट नही। सहिता ऋषिदृष्ट है।

वेद संहिता नही, अक्षरराशि

मैं—वेद केवल सहिता नही, वह अक्षरराशि है। अक्षरो का समुच्चय। प्रत्येक अक्षर स्वतत्र है। पद और अर्थ की झझट ही नही।

विनोबा—जिस समय वेदमत्रो की रक्षा ही एकमेव सर्वोपरि कर्तव्य था तबका वह विचार है।

मैं—लेकिन विचार सर्वकालीन नही हो सकता। पद-पाठ, निघटु, निरुक्त, व्याकरण, भाष्य आदि प्रपच से यह स्पष्ट है कि वह सर्वकालीन नही है। इसलिए पुराने जमाने का विचार चाहे कुछ भी क्यो न हो, आज हमे जरूरत के मुताबिक उसे तराशना ही चाहिए, ताकि उसकी दमक

निखर उठे। जो चाहते है, पुरानी चीजे ज्यो-की-त्यो बनी रहे, उनके लिए सहिता है ही।

पद-पाठ और विवक्षा-पाठ का महत्त्व एक उदाहरण

पद-पाठ भाष्य का ही एक तरीका है, आपका यह कहना मुझे मान्य है, क्योकि उन्ही अक्षरो का पद-विच्छेद भिन्न-भिन्न हो सकता है। यह पद-विच्छेद हरेक के अर्थनिश्चय पर निर्भर करता है। 'स मेने न वदिष्ये' उपनिषद्-वचन का यह पुराना पद-पाठ ह्विटनी ने 'स एनेन वदिष्ये' ऐसा माना है, जो कि शकराचार्य के और परपरागत पाठ से भिन्न है। पर कोई भी स्वीकार करेगा कि वह अधिक समर्पक है।

इसमे 'स' उपसर्ग पद धातु से दूर पड गया है। इस उपनिषद् वचन का वैदिक भाषा मे होना इससे सिद्ध है। वेद मे उपसर्ग सर्वदा अलग आते है, इसलिए आपने उपसर्ग अलग करके उच्चारण करने का जो ढग अपनाया है, उसे इससे और भी बल मिलता है।

विनोबा—तुम जो विवक्षा कहते हो, वह किसकी विवक्षा? ग्रथकर्ता की या पाठक की? ग्रथकर्ता की विवक्षा हम कैसे जान पायगे?

मै—विवक्षा वक्ता की होती है। पर मूल वक्ता ग्रथकार ही रहता है। इसलिए उसकी विवक्षा, जैसी मै समझ सकता हू, रहेगी। इसके मानी यह कि ग्रथकार और पाठक मे भेद का कोई कारण ही नही।

सुसस्कृत

विनोबा—सस्कृत का सधिप्रकरण बडा नटखट है। इसके कारण सस्कृत मे बिना कारण के जटिलता आ गई है। इसीलिए मैने सीधे पद-पाठ करना शुरू किया है।

मै—आपने सब पदो को तथा उपसर्गों को भी अलग करने तक आगे कूच किया है, तो मेरा बताया हुआ विवक्षा-पाठ आप मान्य करेगे। ऐसी सस्कृत को मै सुसस्कृत मानता हू।

विनोबा—ठीक, सुसस्कृत याने सुलभ सस्कृत।

सस्कृत की अमरता का रहस्य

मै—सस्कृत को देवभाषा क्यो कहते है, इस बात का विचार करते

हुए मेरे ध्यान मे एक बात आई है। सस्कृत की उच्चारण-पद्धति स्पष्ट, पूर्ण तथा समान है, इसीलिए वह दस हजार वर्ष तक जी सकी है। आगे चलकर भी वह इसी प्रकार जी जायगी। प्राकृत भाषाओ मे यह गुण नही है, जिसके कारण उनमे वेग से स्थित्यतर होते गये और अन्त मे वे नष्ट हो गई। हमारी प्रादेशिक भाषाओ मे जो ये परिवर्तन होते गये और हो रहे है उनके कारण उन्हे मर्त्य भाषाए कहना पडता है।

'अगरखा' शब्द वास्तव मे 'अग+रखा' है, पर अधूरे उच्चारण के कारण जिसमे 'ग' के बदले 'र' अधूरा बोला जाता है, वह आज अगर+खा जैसा बोला जाता है। इससे शब्द मे विकृति आती है और अर्थव्युत्पत्ति दुर्बोध बन जाती है। ऐसा भी भ्रम हो सकता है कि यह समरखा, अमरखा जैसे किसी मुसलमान का नाम है।

विनोबा—सस्कृत की ही भाति द्रविड भाषाओ मे भी पूर्ण उच्चारण किया जाता है, जैसे नागपुर। इस शब्द का उच्चारण हम 'नाग्पुर्' करेगे। इस उच्चारण मे वे उसे समझ नही सकते, वे फिर से 'नागपूरा' जैसा उच्चारण करके निश्चिति कर लेते है। 'अ' का उच्चारण वे जरा लबा—दीर्घ नही—करते है।

द्रविड भाषाओ ने इस गुण के साथ एक अवगुण—सन्धि—भी अपना लिया है। द्रविड भाषाओ के अध्ययन मे वह बहुत बडी रुकावट है। अब एक तमिळ आगम ग्रन्थ सन्धियो को अलग करके पदपाठमय छप गया है।

सुलभ सस्कृत

सन्धि-नियमो की जटिलता के कारण सस्कृत पिछड गई। प्राकृते आगे बढी। बापूजी कहा करते थे—सस्कृत आध्यात्मिक भाषा है। लोग अत्यधिक व्यवहारी बने, जिसके कारण वह भाषा लुप्त-सी हो गई। पर आम जनता के लिए सरल सस्कृत भाषा तैयार करना सम्भव है। सब शब्द सस्कृत के और प्रत्यय हिन्दी के, इस ढग से भाषा बनाई जाय, तो वह आमफहम हो सकेगी।

घनश्यामसिंह गुप्त जेल मे हमारे साथ थे। वह कताई के वक्त '५ मिनट शेष' कहकर सूचना दे देते थे। पहले-पहल लोग उनके 'शेष' शब्द पर टीका-

टिप्पणी करते थे, पर अनेक महीनो के अभ्यास के कारण वह शब्द वहा रूढ बन गया, इतना कि उसमे कुछ विचित्रता का अनुभव नही होता था।

मैं—एस्परान्तो ऐसी ही एक आसान भाषा बनाई गई है।

विनोबा—पर वह यूरोपीय भाषाओ तक सीमित है। भारत के लिए सस्कृताभिष्ठित भाषा बनानी होगी।

हरपनहल्ली के मार्ग पर
४ दिसबर १९५७

: १५ :

ऋतो स्मर, कृतं स्मर

विनोबा—तुमने लिखा था—" 'कृत स्मर' का अर्थ अपना किया हुआ याद करो, हो सकता है।" पहले मैंने भी वैसा ही अर्थ किया था। पर अधिक सोच-विचार करने पर उसमे परिवर्तन करना पडा। स्मरण करना हो और वह भी अतिम स्मरण तो ईश्वर का किया हुआ ही याने उसका हमपर किया महान् उपकार ही स्मरण करना ठीक होगा।

मैं—'अंतकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्। य प्रयाति त्यजन् देह स याति परमा गतिम्॥' गीता मे वर्णित इस प्रयाण-विधि से आपका अर्थ ठीक मेल खाता है। इसमे जो 'एव' शब्द है, उससे अन्य स्मरण का निषेध स्पष्ट है और इसलिए आपका अर्थ—'अपने सकल्प छोडकर' पूर्ण सतोषजनक मालूम होता है। अलावा इसके ईसा के इन अतिम शब्दो से भी उसका मेल है Thine will be done 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरण व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥' गीता के इस अतिम उपदेश से भी वह पूर्णतया मेल खाता है। लेकिन 'ऋतो' सशोधन अपने ऋतु-सकल्प का त्याग करने नही, उसका विस्मरण न हो इस अर्थ मे प्रयुक्त है यह मेरा खयाल है। इसीलिए पहले वाक्य मे कर्म का निर्देश ही नही है। दूसरी बात, ईश्वर के 'कृत'—उपकार—का स्मरण करो, कहने का प्रयोजन क्या? स्मरण करना है तो सीधे उसीका किया जाय, उसके 'कृतं'

का क्यो ? गीता भी तो उसीका स्मरण बताती है उसके 'कृत' का नही। जड़भरत की कथा भी बताती है कि उसपर पशुयोनि मे जन्म लेने की नौबत आ गई, क्योकि वह ईश्वरमय होने का अपना सकल्प भूल गया था। यह कथा मेरे अर्थ को पुष्ट करती है। कार्यरूप 'कृत' कारण रूप 'क्रतु' के लिए ही प्रयुक्त है। मै मानता हू कि उसका यही अभिप्राय है।

विनोबा—घनश्यामदास बिडलाजी ने एक बार लिखा था—"मै आपकी किताबे पढा करता हूं। आपकी 'ईशावास्यवृत्ति' मुझे बहुत पसद आई। पर 'क्रतो स्मर, कृतं स्मर' का मेरा अर्थ आपके अर्थ से भिन्न है।" 'ओ सकल्पमय जीव, अपने सकल्प का स्मरण करो और उसके अनुसार क्या-क्या किया (या नही किया) उसका स्मरण करो।' यह है मेरा अर्थ। यह अर्थ मेरे दैनदिन जीवन से बिल्कुल मेल खाता है। दिन भर क्या-क्या करना है, मै तय कर लेता हू और उसके अनुसार दिनभर मे क्या-क्या किया गया, मै देख लेता हू।" उनका यह अर्थ मीठा है। मैने उन्हे लिखा 'क्रतो' के बदले 'क्रतु' लेने पर आपका अर्थ ठीक लगता है। पर मै अपने अर्थ पर दृढ हू। यह तो निश्चय मानिये कि अत समय मे मै ईश्वर को छोड और किसीका भी स्मरण नही करूगा।

हरपनहल्ली के मार्ग पर
४-१२-५७

: १६ :

ज्ञानेश्वरी

महाराष्ट्र का धर्मग्रथ

ज्ञानेश्वरी, रामायण, भारत, भागवत आदि ग्रथ लोकभाषा मे हैं। मूल सस्कृत ग्रथो के वे अनुवाद है, तो भी उन्हे केवल अनुवाद मानना ठीक नही। उन्हे स्वतत्र मौलिक ग्रथ मानना चाहिए, क्योकि उनमे उनकी विशेष दृष्टि रही है। केवल मूल कथा ज्यो-की-त्यो लोकभाषा मे लाना उनका उद्देश्य नही। 'ज्ञानेश्वरी' महाराष्ट्र का धर्मग्रथ है। बाइबिल, कुरान, भागवत आदि ग्रथो

से तुलना करने पर वह कही भी घटा हुआ नही मिलेगा। मूल ग्रथ समझकर ही उसका स्वाध्याय होना चाहिए। तमिल की कब रामायण, तेलुगु का पोतन्ना-प्रणीत भागवत, उडीसा का जगन्नाथकृत भागवत, कन्नड का व्यास-रचित भारत, मराठी का मुक्तेश्वरकृत और मोरोपत-प्रणीत भरत सभी ग्रन्थ ऐसे ही हैं। ज्ञानेश्वर 'भाष्यकारातें वाट पुसतु'—अर्थात् भाष्यकार शकराचार्य से मार्ग पूछते हुए—अपनी भावार्थदीपिका लिखते हैं। लेकिन अनेक स्थल ऐसे हैं, जहा उन्होंने अपने स्वतत्र अर्थ बताये हैं, जिससे विश्वाकार की सभावना होती है। वह कर्म, वर्णविशिष्ट कर्म ही विकर्म, तथा जो करना उचित नही वह निषिद्ध कर्म यानी अकर्म। ऐसे अर्थ शाकर भाष्य के सामने रहते हुए भी बताये हैं। यहा उन्हें भाष्यकार से पूछने की आवश्यकता नही महसूस हुई। बारहवे अध्याय मे बताये भक्त के लक्षण शकराचार्य की सम्मति में निर्गुणोपासक के हैं, तो और सब टीकाकारो की राय मे बारहवा अध्याय भक्तियोग का होने के कारण वे लक्षण सगुणोपासक के ही हैं। लेकिन ज्ञानेश्वर ने अपनी टीका मे इन दोनो सम्मतियो को 'याहीवरी भजनशील माझा ठाई' अर्थात् 'इनकी अपेक्षा भजनशील भक्त मुझमें रहता है' कहकर बडी खूबी के साथ लपेट लिया है। अंतिम निष्ठा के नाते ये लक्षण निर्गुणपरक है, यह शकराचार्य का विचार उन्हे मान्य है। पर उसीके साथ 'मय्यावेश्य मनो ये मा नित्ययुक्ता उपासते, श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मता' यह बारहवें अध्याय का निष्कर्ष भी टाला नही जा सकता, यह भी वह नही भूले। ऐसे कितने ही स्थल बताये जा सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि इन सब ग्रन्थो का अध्ययन स्वतत्र धर्मग्रन्थ के नाते किया जाना चाहिए। ईशोपनिषद् का मेरा गद्यानुवाद मौलिक मानकर इसीपर लिखने की सोच रहा हू।

वैदिक भाषा और मराठी भाषा

विनोबा—ईशावास्योपनिषद्वृत्ति मैंने प० नारायण शास्त्री के पास भेज दी थी। खासतौर पर वह उन्हें पसंद आई थी। 'जगत्' याने 'जाने-वाले' इस अर्थ पर उन्होंने आपत्ति उठाई थी।

मैं—जगत् अर्थात् गच्छत्, चरत् (चलनेवाला) अर्थ स्पष्ट है। चरा-

चर सृष्टि से जीवाजीव सृष्टि का मतलब हम जानते है। 'सूर्य आत्मा जगत-स्तस्थुषश्च' वचन प्रसिद्ध है। 'जगत्' जीनेवाले' समझने मे कोई आपत्ति नही। मै मानता हू कि मराठी की धातु 'जगणे' जीना उसीसे निकली है। वह मूल मे वैदिक है, यह मेरी धारणा है। मराठी के कई शब्द सीधे वेदो से निकले है, उदाहरणार्थ देव, एकमेक, अवाढव्य, वैसे ही 'जगणे' धातु आदि-आदि।

गीता नारिकेल-पाक

विनोबा—गीता नारियल के समान है, वह अगूर के समान नही। युद्ध की कथा उसका कवच है, गाधीजी इस रूपक को मानते थे। वह कहते—वह उपनिषदों का देवासुर सग्राम है। तिलक उसे इतिहास समझते थे।

गीता और शकर-तिलक अरविद

शकराचार्य कर्म-सन्यास का प्रतिपादन करते है, तिलक ज्ञानोत्तर कर्म का और अरविन्द मुक्ति के उपरान्त भी कर्म करने का प्रतिपादन करते है। इसके मानी यह कि मुक्ति अमुक्ति बन गई। उसमे भी अगर कर्म रहा तो वह मुक्ति कैसी ?

गीता और भागवत

भागवत भावप्रधान है, माधुर्य उसकी आत्मा है। अनुवाद मे वह नही पकडा जाता। गीता अर्थप्रधान है।

: १७ :

अध्ययन की पद्धति

अध्ययन का विषय एक नही रहता। उसमे अनेक शाखोपशाखाए विद्यमान रहती है। अनेक अगोपाग हुआ करते है। उनमे से एक-एक को लेकर उसका चितन किया जाय। पहले समग्र दर्शन कर लिया जाय, बाद मे अगश अध्ययन हो। अन्त मे फिर एक बार समग्रता मे उसे देखा जाय। प्रथम समग्र निरीक्षण मे सूक्ष्म ज्ञान नही मिला हो, तो बाद मे विश्लेषण करके अगश उसे देखा जाय। उसके सब अगो को मिलाकर एकीकरण किया जाय। इस

प्रकार समग्र स्थूल दर्शन, पृथक्करण और एकीकरण करने पर अध्ययन पूर्ण हो जाता है। इतना करने पर जब जो अंश चाहते हैं तब वह मौजूद रहता है। घर पर मां क्या करती है? अलमारी में सब चीजें करीने से रख देती है और जब जो चीज चाहती है तब वह उसे झट मिल जाती है। तीसरे खाने में दाहिने कोने में अमुक बोतल में अमुक वस्तु है, वह कह सकती है। चाहे जब वह उसे ठीक निकाल लेती है। वैसे ही अध्ययन से ज्ञान की उप-स्थिति समझिये।

कालचौकेरी,
२-१२-५७

: १८ :

धर्म-श्रद्धा और धर्म-निष्ठा

मैं—विनोबा, कल आपने कहा कि दुनिया में धर्म-श्रद्धा निर्माण हुई है, धर्म-निर्माण नहीं हुआ। आपका क्या आशय था?

विनोबा—आम तौर पर सत्य, अहिंसा आदि का विचार समाज में मान्य हो गया है। लेकिन किसी भी हालत में, चाहे जो हो, किसी भी कारण के लिए झूठ बोलना ही नहीं चाहिए या युद्ध करना ही नहीं चाहिए, यह निष्ठा निर्माण नहीं हुई। उदाहरण के लिए बसव कहते हैं—'काय-कवे कैलास'—अर्थात् शरीरश्रम ही कैलाश है। इसे भला विचार मान लिया गया है। तो भी लड़की के लिए वर ढूंढते समय यह सावधानी से देखा जाता है कि लड़की को कष्ट न उठाने पड़ें। इसका अर्थ यह है कि शरीरश्रम को धर्म नहीं मान लिया गया। निष्ठा के रूप में उसे प्रतिष्ठा नहीं मिली। अहिंसा भला के रूप में मान्य है, लेकिन किसी भी कारण के लिए मारना ही नहीं चाहिए, यह निष्ठा नहीं पैदा हुई। युद्ध करना गलत माना गया, पर उसे अधर्म नहीं माना गया। मगर नहीं करना चाहिए, यह अप्रति-ष्ठा भी पैदा हुई। लेकिन चोरी को दण्डनीय अपराध माना गया है, ऐसा युद्ध को नहीं माना गया। चोरी बरदाश्त नहीं की जाती, मगर किया

जाता है। इसका अर्थ यह कि श्रद्धा पैदा हुई, पर निष्ठा नही।

महम्मद का शस्त्रधारण

परिस्थिति के कारण आदमी गिर जाता है। महम्मद मक्का से मदीना भाग गये। पर वहा भी विरोधियो ने उनका पीछा नही छोडा। वह सताये जा रहे थे। उनपर थूका जा रहा था। तब उन्होने आत्मरक्षा के लिए शस्त्र धारण किया और अपने अनुयायियो से धारण कराया।

आज ससार मे सर्वत्र धर्म-ग्रथ फैले हुए है। बाइबिल दुनिया की सब भाषाओ मे प्रकाशित हुआ है। उसका प्रसार दुनिया भर मे हो गया है। उसके साथ-ही-साथ दुनिया का शस्त्रसभार भी बढ चुका है। धर्म-ग्रथो का इस कदर प्रसार दुनिया मे पहले कभी नही हुआ था और शस्त्रसभार भी इतना कभी नही बढा था। इतना विज्ञान पहले दुनिया मे था ही नही। सत्य नही बोलना चाहिए, ऐसा कोई नही कहेगा और न कोई सिखायेगा भी। घर बाधते समय हम दीवारे, खम्भे आदि बधवाते-गडवाते है, और हम जानते है कि इसमे गलती होने पर घर टिक नही पायेगा। पर सत्यादि नीति-धर्मो के विषय मे इस प्रकार की निष्ठा हममे दृढमूल नही हो गई है।

मनु और पीनल कोड

'अदंड्यान् दडयन् राजा दंड्यांश्चापि अदडयन्। नरक महदाप्नोति', यह मनु की उक्ति है। दडनीय अपराधी को सजा देनी चाहिए। अगर वह वैसे ही छूट गया तो वह बडा अधर्म होगा, अन्याय होगा, यह उनकी धारणा थी। लेकिन आज का पीनल कोड दडनीय अपराधी बिना दड पाये रह जाय तो उसमे दोष नही मानता। पर अदडनीय निरपराध आदमी दड का शिकार हो जाय तो बडा अधर्म माना जाता है, यह मनु की अपेक्षा प्रगति है। यह समाज की प्रगति है, उन्नति है। पर दड का शिकार कोई भी न हो, कोई भी दडनीय नही है, सब शिक्षणीय है, सुधार के ही लायक है, इन विचारो तक समाज की उन्नति नही हो गई है।

न्याय और दया

मै—विचार से परिवर्तन होगा, सुधार होगा, लेकिन तबतक राह देखने को हम तैयार नही। मै मानता हू कि इसलिए दड-शक्ति समाज मे

स्वीकृत हो गई है।

विनोबा—जिसने मृत्युदड पाने योग्य गुनाह किया है उसे फासी पर लटका देना ही चाहिए, बगैर उसके न्याय नही होगा, यह मान्यता पहले थी। अब हम कहते है कि न्याय मे दया रहे। पर न्याय के घर के एक कोने मे दया को स्थान दिया गया है, यही इसका मतलब है। लेकिन दया ही की जाय, वही न्याय है, इस विचार को अबतक मान्यता नही मिली। जो फासी की सजा पा गया है, वह राष्ट्रपति के पास दया की याचना करे। राष्ट्रपति देखेंगे कि वह खूनी दयापात्र है या नही, उसके गुनाह मे कही 'ग्रेस' की गुजाइश है या नही, और तब दया करेंगे, और फासी के बदले आजन्म कालेपानी की सजा फरमायेंगे। पर फासी की सजा ही रद्द की जाय यह विचार मान्य नही हुआ है। रामदास गाधी की कोशिश थी कि गाधीजी के खूनी को फासी पर न लटकाया जाय। हृदय-परिवर्तन के लिए अवसर दिया जाय। यह मन बहुत विशाल है। पर समाज और सरकार को यह मजूर नही था।

इसलिए अपने ग्रथ ज्यो-के-त्यो हम नही स्वीकार कर सकेंगे। उनका सुधार करके ही उन्हे चुनना चाहिए। क्या 'मनुस्मृति', क्या अन्य ग्रथ, इस प्रकार कडी जाच के बाद ही लेने पडेंगे।

शकर, ज्ञानदेव और गाधी

मैं—इसलिए आपका सार श्लोक और विशेषकर 'जीवन सत्यशोधनम्' वाला चरण मुझे बहुत भाता है।

विनोबा—शकराचार्य का जगन्मिथ्यावाद असत्य नही। पर वहा मिथ्या शब्द का प्रयोग पारिभाषिक अर्थ मे किया हे और इसका अर्थ है, जो सत्य भी नही और असत्य भी नही। लेकिन आज 'मिथ्या' का अर्थ झूठ लिया जाता है, जो कि भ्रात है। इसमे मैंने कुछ सुधार कर लिया है—जगत् स्फूर्ति। इसमे मैं तीनो प्रकार से सहचार्यता चाहता हू। 'ब्रह्म सत्यम्' शकर का 'जगत्-स्फूर्ति' ज्ञानदेव का 'त्यागजीवन सत्यशोधनम्', गाधीजी का ऋण है। इन तीनो से मैंने बडा समाधान पाया है।

सामने घना अधकार हो तो उसपर प्रकाश-पुज छोडना विज्ञान-निष्ठा

है। सामने द्वेप का आधिक्य है, तो उसपर बहुत प्रेम करना धर्म-निष्ठा है। लेकिन अबतक मानव-समाज मे उसका आविर्भाव नही हुआ। सत्य, अहिंसा आदि श्रद्धाए उदित हुई है, पर धर्म अबतक बना नही। 'धारणात् धर्मः'।

मै—बुद्ध की सम्मति मे भी 'जीवन सत्यशोधनम्' सही है। 'ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या वा स्फूर्तिः'—ये वाद है। उनके बारे मे उन्होने मौन धारण किया है।

...   .

वे भी मनुष्य ही थे

विनोबा—लोग शकराचार्य और बुद्ध की तुलना करते है, पर वे यह नही देखते कि शकराचार्य ३२वे वर्ष मे दिवगत हुए और बुद्ध ८० साल तक जीवित रहे।

मै—शकराचार्य ने समाज की भ्रान्त धारणाओ के सामने सिर नही झुकाया। उन्होने बिना हिचक मा के शव के तीन टुकडे करके उसका दहन किया। इस उदाहरण से ऐसा प्रतीत होता है कि अगर वह बुद्ध की भाति दीर्घ आयु पा जाते तो कितनी ही क्रातिकारी बाते कर देते।

विनोबा—बापू एक बार मुझसे बोले—"किसीने ईसा की कृष्ण के साथ तुलना की है, पर यह ठीक नही। ईसा ३२वे वर्ष मे क्रूस पर लटक गये और कृष्ण १२५ बरस तक जीवित रहे।" आयु का विचार करना चाहिए। शकराचार्य से मेरी तुलना करने मे शकराचार्य के लिए अन्याय होगा। वह भी मनुष्य ही थे। पर लोग इस बात को भूल जाते है।

कानहल्ली की राह पर,
५-१२-५७

: १९ :

कणिका—१

ज्ञानदेव की समाधि

बाळशास्त्री हरिदासजी ने ज्ञानेश्वर की समाधि के बारे मे जो लिखा है वह मुझे पसद आया। वह कहते है—लोग मानते है कि ज्ञानेश्वर ने खुद-कशी की, पर उनका यह मन्तव्य सही नही। उन्होने समाधि लगाई है। अब भी वह समाधि अवस्था मे ही है। उनका शरीर नष्ट हुआ होगा, पर वह समाधि-स्थित है। इसलिए तो वह एकनाथ, तुकाराम को दर्शन देते है, उपदेश देते है।

बालकोबा—"इस प्रकार अगर मै समाधि मे बैठ जाऊ तो क्या मेरे सिर पर पत्थर रख देगे ?" मै—"प्रयोग करके देखना पडेगा।"

बुद्धि ही प्रमाण

विनोबा—सेवानन्दजी ने सुझाया कि भागवत से चुने हुए श्लोको मे दशावतार-विषयक कई श्लोको का अन्तर्भाव किया जाय। लेकिन उनमे एक श्लोक मे बुद्ध का उल्लेख महावतार 'वादैर्विमोहयति' से किया है, जो मुझे स्वीकार्य नही। इस कारण वे सभी श्लोक मुझे छोड देने पडे।

मै—भागवत का यह उल्लेख भ्रात है। गीत गोविदकार कवि जयदेव ने बुद्ध को कारुण्यावतार 'कारुण्यमातन्वते' कहा है।

विनोबा—शकराचार्य-कृत 'विवेक चूडामणि' से 'मनुष्यत्व मुमुक्षुत्व महापुरुपसश्रय' आदि अश मैने चुन लिया, पर आगे उसीमे 'स्त्रीत्व नही चाहिए, स्त्री को ज्ञान प्राप्त नही होता और ज्ञान न हो तो मोक्ष प्राप्ति भी नही होती' आदि कहा गया है। जन्मातर मे जब कभी उसे पुरुप जन्म मिलेगा तब मोक्ष की सम्भावना होगी। चूकि यह विचार गलत है, मैने उस अश को छोड दिया। मेरे हृदय मे शकराचार्य के लिए बडी भक्ति-भावना है, तो भी उनका लिखा हुआ सबकुछ मै स्वीकार नही करूगा।

शकरजी ने पूछा था—क्या ऐसा कोई धर्मग्रथ है जो सबको

देने लायक हो। मैंने कहा—जी नही। फिर वह बोले—आप ही क्यो नही लिख देते ऐसा कोई ग्रथ? तब मैंने उन्हे ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ के ग्रथो के सार की जानकारी दी और इसी प्रकार तुकाराम और रामदास की रचनाओ से भी चुनाव करके 'पचामृत' बनाने का विचार उनके सामने रख दिया।

मैं—इसके मानी है कि आपको व्यक्ति या ग्रथ के प्रामाण्य की अपेक्षा बुद्धि-प्रामाण्य अभीष्ट है।

विनोबा—हम अपनी सम्मति बना सकते है, पर हर व्यक्ति अपनी सूझबूझ से ही काम लेगा।

बुद्ध-मत

मैं—बुद्ध की यही मान्यता है। वह कहते है—'हर व्यक्ति अपनी बुद्धि की कसौटी पर मेरा विचार कस ले। खरा उतरने पर उसे स्वीकार करे।' इसका नाम बुद्धि-प्रामाण्य। बुद्धौ शरणमन्विछ।

विनोबा—अमृतानुभव मे ज्ञानेश्वर भी यही कहते है·

परी शिवें का श्री-वल्लभें। बोलिलें एणें चि लोभें।
मानूं न; तेंहि लाभे। न बोलता हि॥ अ० ३.३८

शकर कहते है या विष्णु कहते है, इसी कारण हम किसी बात को नही मानेगे।

स्वतत्र बुद्धि के बिना ज्ञान मोर के पिच्छो की आखो के समान है। आखे है, पर दृष्टि नही।

मोराचा आगी असोसें। पिसे आहाति डोलसें।
आणि एकली दीठी नसे। तैसें तें गा॥ अ १३ ८३३

पसु-कूल-धर जन्तुं किसं धमनि-संथत।
एक वनस्मि झायन्त तमहं ब्रूमि ब्राह्मण॥ ध० ३९५

पासुकूल याने स्थ्याकर्पट, फेके हुए चीथडे। 'जन्तु' का अर्थ राधाकृष्णन् ने दिया नही। जन्तु याने प्राणी, जो केवल प्राणधारण किये हुए है, या जिसे मनुष्य करके पहचानना कठिन है। ऐसे व्यक्ति को ब्राह्मण याने आदर्श जीवन वितानेवाला कहना हो, तो विचार उठता है कि क्या यही

बुद्ध का मध्य मार्ग है ?

'न नग्नचरिया न जटा न पका' आदि श्लोक मे कहा है कि बाह्य स्थिति ब्राह्मण का लक्षण नही, आतरिक शाति जैसे गुण ही ब्राह्मण-लक्षण है। मैने इन दो विसवादी गाथाओ को एकत्र रखा है। विचार की कसौटी पर उन्हे कस लेना पडेगा। दोनो को ज्यो-का-त्यो नही लिया जा सकेगा। एक को ही स्वीकार किया जा सकेगा।

मै—'नग्नचर्या' पद से मुझे लगता है, महावीरादि जैनो की तरफ अगुलि निर्देश है। उस पर कुछ कडी नजर भी दिखाई देती है।

विनोबा—महावीर के बदन पर का वस्त्र काटो मे उलझकर फट गया, बाद मे पहना हुआ वस्त्र भी चला गया। तब वह विवस्त्र घूमने लगे। वह अत्यन्त सुन्दर थे। नग्न रहना मुझे पसन्द है, सपने मे कभी-कभी देखता हू कि मै नग्नावस्था मे विचर रहा हू। आखो पर चश्मा और कमर पर धोती मुझे झझट-सी लगती है।

लगोटी पहनना, मौजी बधन सस्कार है। वह है लक्षण सुसस्कृतता का। पर वस्त्र-रहित रहना ही आदर्श है। वह प्रमुख लक्षण है। 'मुनियो वातारशना' से वर्णित नग्नता-सम्प्रदाय वेद मे भी पाया जाता है। यद्यपि यह बात है तो भी तुकाराम के वचन—त्याच्या गला माल असो नसो—अर्थात् उसके गले मे माला रहे या न रहे—के अनुसार ही बुद्ध का अभिप्राय है, और वही ठीक है।

कनाहल्ली की राह पर,

५-१२-५७

: २० :

स्थितप्रज्ञता की नितान्त आवश्यकता

मै—आज ससार मे आत्मज्ञान और सृष्टिज्ञान काफी मात्रा मे है, तो भी क्या यह कहा जा सकता है कि समाज का दु ख घट गया है और मानव सुखी हो गया है ?

विनोबा—दु ख त्रिविध है . आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक। लेकिन कौन-सा दु ख किस प्रकार का है, यह निश्चित करने मे हमेशा मैं उलझन मे पड जाता हू । इसलिए अब शारीरिक, सामाजिक, मानसिक इस त्रिविध रूप मे हम उसका विचार करेंगे ।

शारीरिक दु ख आज बहुत ही कम हो गये है । पहले जन्मते ही कितने ही मर जाते थे । थोडे ही बचते थे । इनमे से रोगो के कारण बहुत मर जाते, जीवनावधि मे भी अनेक आपत्तियो से जूझना पडता । पर विज्ञान के कारण मृत्यु-सख्या घट गई है । रोग, दु ख, कष्ट, यातनाए हट गई है । विज्ञान इतनी तरक्की कर चुका है कि बढती आबादी पर कैसे रोक लगाई जाय, यह समस्या उठ खडी हुई है ।

सामाजिक दु ख बढे हुए दिखाई देते है । लेकिन उनके भी निकट भविष्य मे इलाज मिल जायगे । सामाजिक बीमारिया आज व्यापक और सद्योविचारणीय बन बैठी है । पर पुराने जमाने की भाति आज कोई किसी की औरत को नही भगा ले जाता । रावण ने सीता को हरण किया । दुर्योधन ने द्रौपदी को विवस्त्र किया । ये बाते आज के समाज मे नही हुआ करती । पहले एक राजा अनेक स्त्रियो से ब्याह कर लेता, जिसके कारण अनेको बिनब्याहे रह जाते थे । वह स्थिति आज नही । पहले वधू को भगा ले जाना विवाह का एक प्रकार माना गया था । कृष्ण रुक्मिणी को उठा ले गया था । आज कोई भी यह नही कहेगा । आज सामाजिक दु ख बहुत-से नही है । जो है उन्हे शीघ्र ही दूर किया जा सकेगा । उनका निवारण अतर्राष्ट्रीय दृष्टि से होगा । उनके बारे मे जागतिक प्रबन्ध हो जायगा ।

लेकिन मानसिक दु ख आज बहुत बढ गये है । मन पर अकुश रखना आज की कडी आवश्यकता है, क्योकि विज्ञान सौगुना बढ गया है, पर मन की शक्ति का विकास उसकी अपेक्षा बहुत ही कम हुआ है, हालाकि वह पहले की अपेक्षा बढ गई है । पहले चोरी के लिए चोर के हाथ-पैर काट डालते थे । आज हम वैसा नही करते । आज के सवाल अतर्राष्ट्रीय स्वरूप के यानी व्यापक होते है, जिनका निर्णय तुरन्त करना पडता है । इसलिए हम स्थितप्रज्ञ के लक्षणो को जानने मे लग गये है । पहले मन पर काबू रखने से काम चलता था, पर आज विज्ञान से अमर्याद विकास के

कारण केवल उससे काम वही वनेगा। अव तो मन के ऊपर उठने की आव-श्यकता है। मन को खूटी पर लटकाकर रखना चाहिए। वेदान्ती इस प्रक्रिया को मनोनाश कहते हैं। मन का नाश हो जाय तो क्या होगा, इसकी चिंता नही करनी चाहिए। बुद्धि है। वह बुद्धि रागद्वेष से परे होकर ससार की समस्याए सुलझा सकेगी। रागद्वेष का मिट जाना ही मनोनाश है। वही उन्नयन हे। समाजवाद, साम्यवाद आदि शास्त्र समाज के प्रश्न हल नही कर सकते। उसके लिए बुद्धियोग ही चाहिए, स्थितप्रज्ञता की आव-श्यकता है। किसी भी कारण से मन क्षोभ होना नही चाहिए। ऐसी अक्षोभ्य शाति जहा होगी वहा यह समस्या हल होगी। प्रतापगढ पर का प्रदर्शन मन का खेल है, क्षोभ है। वह ववई का सवाल नही हल कर पायेगा। राग-द्वेष दोनो और है, वगैर उनके ऊपर उठे यह प्रश्न नही सुलझ पायगा। इस रागद्वेष के कारण ही महाराष्ट्र का विकास रुक-सा गया है। दुनिया मे ग्राम-स्वराज्य और विश्व-शासन दो ही बाते रहेगी। वीच का सव टिक नही पायेगा। सयुक्त महाराष्ट्र, महागुजरात जैसे प्रश्न मूढ हैं। मन के ऊपर बिना चढे वे नही सुलझेंगे।

हुविनहडगली की राह पर,
ता० ६-१२-५७

: २१ :

कणिका—२

क्षेत्रक्षेत्रज्ञ-विभागआत्मज्ञान

पिंड-ज्ञान और ब्रह्माड-ज्ञान मे से आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान मिलता है। पिंड-सशोधन से आत्मज्ञान और ब्रह्माड-सशोधन से ब्रह्मज्ञान। पिंडसशो-धन से अगर केवल शरीरगत धातुसस्था-प्रक्रिया आदि का निरीक्षण किया गया तो वह भौतिक ज्ञान होगा। आत्मज्ञान के लिए क्षेत्रक्षेत्रज्ञ-विभाग का ज्ञान आवश्यक है।

शरीर-यात्रा, समाज-सेवा और चित्तशुद्धि

मानव शरीर, समाज तथा चित्त के लिए परिश्रम किया करता है। इन तीनो मे से प्रथम चित्त-शुद्धि की साधना करके बाद मे समाज-सेवा करने का उसका विचार रहता है। चित्त-शुद्धि के साथ वह शरीर का योग-क्षेम भी चलाता ही है। समाज-सेवा वैसी ही रह जाती है। इन तीनो मे प्रधानता चित्तशुद्धि की है। लेकिन उसके बाद समाज-सेवा का स्थान रहना चाहिए। उसके बाद ही शरीर-यात्रा—यह क्रम रहे। वास्तव मे तीनो को एक साथ ही चलना चाहिए।

धर्म-सकट

'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्य अपिहितं मुखम्'—इसका आशय क्या ? किसीके पैरो मे सौ तोले की चादी की शृखला चढाई जाय, तो उसे बधन नही माना जाता, अलकार माना जाता है। वास्तव मे वह बेडी ही है। लोहे को बेडी कहते ही है। वैसे धर्म और अधर्म मे चुन लेना हो तो कोई भी समझदार व्यक्ति धर्म को ही चुन लेगा। लेकिन दोनो भी धर्म ही सामने आते है, और उनमे से कौन-सा अधिक हितकारी है यह सवाल उठ खडा होता है तब परख हो जाती है। तब सूक्ष्म विचार करना पडता है, और धर्म कौन-सा और मोह कौन-सा चुन लेना होता है। राम ने सीता को वन मे त्याग दिया। कोई-कोई राम को इसके लिए दोष लगाते है। लेकिन जब यह प्रसग आ पडा कि पति के नाते अपना कर्तव्य क्या है और राजा के नाते क्या है, इनमे चुन लेना है तब राम ने यह पहचाना कि मैं राजा हूं और मेरा पहला कर्तव्य है प्रजानुरजन और अन्य कर्तव्य को उस मुख्य धर्म की बलिवेदी पर अर्पण किया। इनमे से पारिवारिक कर्तव्य हिरण्मय पात्र है।

रामचन्द्रजी कहते है—

> स्नेहं दया तथा सौख्य यदि वा जानकीमपि।
> आराधनाय लोकस्य मुंचतो नास्ति मे व्यथा॥

पर सीता ने भी लक्ष्मण द्वारा सदेश भेजा है—'वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा, तपस्विसामान्यमवेक्षणीया।

अरविंद का उज्ज्वल अयश

श्री अरविंद की साधना सफल हो गई थी या नही ? उनके शिष्य मानते है कि उनकी साधना पूर्णता को पहुच चुकी थी और वह अव्यक्त रूप से अवतीर्ण हुए है। उनकी आध्यात्मिक सत्ता जगत मे काम करने लग गई है। लेकिन इस बारे मे मैने एक बार कहा था कि अरविंद की साधना अयशस्वी हो गई है।

जगत मे तीन प्रकार के लोग होते है। एक वे है जो अपनी सामर्थ्य के अनुसार अपना ध्येय निश्चित कर लेते है, ठक्कर बाप्पा की भाति। दूसरे वे जो अशत. सफल और अशत असफल होते है, सरदार वल्लभभाई के समान। तीसरे वे जो केवल ध्येयवादी है और अपना ध्येय इतना अलौकिक रखते है कि वहातक कोई भी पहुच नही सकता। अरविंद इसी प्रकार के थे।

मेरी साधना अधूरी

"आपकी चित्तशुद्धि पूर्ण हुई है या नही ?"

—जबतक देह है तबतक साधना अधूरी है कहना चाहिए।

"पर आपमे कोई अशुद्धि है, ऐसी कल्पना नही की जा सकती।"

—दूसरे उसे समझ नही पाते। वही खुद देख सकता है। चडोल पक्षी सूर्य की ओर उडान भरता है और दृष्टि की पहुच से परे जाता है। पर वह सूर्य तक थोडे ही पहुच जाता है ? पृथ्वी से वह १०००००० फुट ऊपर गया हो तो भी उसमे और सूर्य मे अपार अन्तर रहता ही है।

पीठाधीश शकराचार्य ने एक बार मुझसे पूछा, "आप भूदान-पदयात्रा किसलिए कर रहे है ?" तब मैने जबाब दिया, "चित्तशुद्धि के लिए।" कई लोग भावनात्मक दृष्टि से देखते है। उन्हें आभास होता है कि अपनी साधना सफल हो गई। लेकिन मै हू गणिती, मैं अपनी भावना को ठीक नापता रहता हू। मुझे प्रतीत नही होता कि अपनी साधना पूर्ण हुई। वैसा अनुभव किया जाय तो कहा जा सकेगा। अबतक तो वैसा अनुभव नही।

मार्ग पर का स्वागत

"मार्ग मे आपके दर्शन [illegible]

लिए तनिक ठहरकर आप उनका स्वागत स्वीकार क्यो नही करते ? वैसा न करना अच्छा नही मालूम होता।"

—मेरी दो अवस्थाए रहती है ध्यानावस्था तथा सेवावस्था। जब मैं ध्यानावस्था मे रहता हू, या पडाव दूर का होता है तब मैं बीच मे नही रुकता। लेकिन साथवालो ने सुझाया और जमा हुए लोग शात-शुश्रूषु हो तो दो-एक मिनट के लिए ठहर जाता हू और कभी-कभी बीस-पच्चीस मिनट भी भाषण मे बिताता हू।

मन को काबू मे कैसे रखा जाय ?

बाह्य नियमन का असर नही होता। नियमन आतरिक चाहिए। मन के कहे अनुसार बरतना नही चाहिए। बुद्धि का आदेश सुनना आवश्यक है। इस निर्णय पर पहुचने से मन काबू मे किया जा सकता है।

हिरेहडगली के मार्ग पर,
ता० ७-१२-५७

: २२ :

शिवाजी : भानुदास : वल्लभाचार्य

हपी विरूपाक्ष मदिर मे शिवाजी

इस बेल्लारी जिले मे जो हपी (विजयनगर) है वह हपी विरूपाक्ष नाम से प्रसिद्ध है। वहा विरूपाक्ष महादेव का मदिर है। पुराने जमाने मे वहा भयानक जगल था। शिवाजी महाराज अपने कर्नाटक-आरोहण मे उस मदिर मे गये थे। सैनिको और अन्य लोगो को बाहर छोडकर वह अकेले अन्दर गये। बहुत समय बीत जाने पर भी वह बाहर नही आये। क्या हुआ, देखने साथवाले लोग अन्दर गये। देखते क्या है कि महाराज समाधिस्थ बैठे हैं। वहा से बाहर जाना उन्होने नही चाहा। वही रहने का अपना विचार उन्होने व्यक्त किया। तब अमात्य ने कहा—हम तो यहा आरोहण के लिए आये है और बाहर सेना खडी है। तब वह समझ गये और वहा से

चल पडे । यह घटना प्रसिद्ध नही है, पर इतिहासज्ञ उसे जानते है ।

• • •• •

भानुदास का कार्य

विजयनगर के राजा ने पढरपुर से विट्ठल की मूर्ति विजयनगर मे ला रखी थी । पढरपुर मुसलमानो के कब्जे मे था । उस अशान्ति के समय मे वहा मूर्ति सुरक्षित नही रहेगी, इस विचार से सद्भावना से ही उन्होने यह काम किया था । पर मूर्ति की सुरक्षा के लिए सेना रखी जाय या भक्तो द्वारा प्राणो का वलिदान किया जाय, ऐसी कुछ घटना नही घटी । पचास-साठ वरसो के वाद एकनाथ के दादा सत भानुदास ने विजयनगर से वह मूर्ति लाकर फिर से उसकी स्थापना पढरपुर मे कर दी । यह उनका वहुत वडा कार्य है । यह मामूली काम नही । एकनाथ के मन पर इस काम की गहरी छाप है । भानुदास महान् भगवद्-भक्त थे । अपने जत्थे के साथ वह विजय-नगर गये । उनकी भक्ति देखकर राजा सतुष्ट हुआ । वह मूर्ति भानुदास के हवाले करनी ही पडी । भानुदास ने निश्चय किया था कि बिना मूर्ति लिये वह लौटेगे ही नही । इस काम के लिए वह कुछ दिन विजयनगर मे ठहर गये । इस किस्से का जिक्र एकनाथ ने अपने अभगो मे वार-वार किया है ।

••• •• •

पढरपुर और वल्लभाचार्य

वल्लभाचार्य तेलगाना के निवासी थे । वह वडे विद्वान् थे । देश भर मे वह घूमते रहते । वह पढरपुर पहुचे । पहले अकेला विट्ठल ही वहा था । वाद मे विट्ठल के पडोस मे रुक्मिणी की मूर्ति स्थापित की गई है । उस मदिर मे रहते हुए उन्हे विट्ठल से दृष्टात प्राप्त हुआ कि 'यात्रा बस हो गई, अव गृहस्थाश्रम का आयोजन करो । मै तुम्हारे कुल मे जन्म लूगा ।' उसके अनुसार उन्होने उत्तरप्रदेश मे जाकर विवाह किया और मथुरा मे जा वसे । उनके जो पुत्र हुआ उसका नाम विट्ठलनाथ रक्खा । उन्होने वल्लभ-सप्रदाय को खूब वढाया । सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे । वल्लभ-सप्रदाय राजस्थान और गुजरात मे फैल गया हे । वल्लभभाई और विट्ठलभाई

नाम उन्हीकी वदौलत है। गुजरात मे दयाराम अत्यत मधुर काव्य का रचयिता कवि हो गया है। पर उसके काव्य मे तत्वविचार है। इस कारण उसका प्रचार ज्यादा नही। सूरदास का काव्य लोकप्रिय है। सव ओर उस-का प्रभाव है। द्वारका के वारे मे महाराष्ट्र मे भी वडी भक्ति है। ज्ञानदेव ने कहा है—"द्वारकेचे वाटे पडलें सुनाटें पाऊल नाही" अर्थात् द्वारका के मार्ग पर जो कदम चला उसकी राह कभी सूनी नही पडी, वह वहती ही रही। महाराष्ट्र और गुजरात का सम्वन्ध वहुत पुराना है। विदर्भ के लोगो से मैंने कहा, "हमारी रुक्मिणी वर्धा-तीर की और कृष्ण द्वारका के निवासी। दोनो वम्वई राज्य मे इकट्ठा हो रहे है। पुराना सम्वन्ध नया और दृढतर हो रहा है।"

हिरेहड्गली की राह पर,
ता० ७-१२-५७

: २३ :

सेनापति बापट

आज चर्चा के सिलसिले मे सेनापति बापट का नाम आया। तव विनोवा ने उनके सम्वन्ध मे कई मजेदार किस्से सुनाये।

१ एक वार सेनापति बापट मुझसे मिलने आये थे। वह बोले—शकराचार्य ज्ञान पर इतना बल क्यो देते है, मेरे दिमाग मे घुस नही सकता।

मै बोला—आखिर महत्त्व दिमाग का ठहरा न ? यही तो शकराचार्य कहते है।

२ सेनापति वापट बोले—लोग ईश्वर का अस्तित्व अनेक प्रकार से सिद्ध किया करते है। मुझे उसकी प्रतीति पर्याप्त प्राप्त हुई है। मैंने कितनी ही वार मरने की कोशिश की, पर ईश्वर के सामने मेरी एक न चली। अव मैंने उस धुन का त्याग कर दिया। वोला, जव उठा ले जाना है, ले चलो।

३ आपकी सफाई का काम कैसा चल रहा है ? मैंने पूछा।

सेनापति—साथी मिल जाने के समय से ठीक चल रहा है।

मैं—कौन है यह साथी ?

—ठेला गाडी।

४ गोवा के लिए सत्याग्रह करने का आदोलन चल रहा था। एक प्रवचन मे मैंने कहा था कि जबतक भारत सरकार सेना रखे हुए है, तबतक उसे सत्याग्रह करने का कोई अधिकार नही। सेनापति बोले कि विनोबा का कहना ठीक है, उनकी राय ठीक मेरी जैसी ही है कि भारत सरकार को चाहिए कि गोवा पर सेनासहित धावा बोल देना चाहिए।

५ एक बार सेनापति बापट ने मुळशी तहसील मे सत्याग्रह-सग्राम छेडा। पर उसमे दीर्घदृष्टि का अभाव रहा। देश को बिजली की जरूरत थी। वास्तव मे सरकार का फर्ज था कि उन गावो को दूसरी जगह बसा देती। लोगो को जमीन देना आवश्यक था। नेताओ का भी कर्तव्य था कि वे लोगो को ठीक-ठीक समझा देते कि यह सब देश के कल्याण के लिए कैसे आवश्यक है, और सरकार से सहयोग करना उनके लिए कैसे जरूरी है। किन्तु अल्पदृष्टि के कारण यह नही हो सका।

हिरेहडगली के मार्ग पर,
ता० ७-१२-५७

: २४ :

अवतार-कल्पना

मैं—अवतार की कल्पना क्या है ?

विनोबा—सनातनी मानते है कि ईश्वर ही अवतार लिया करता है। योगी अरविंद भी मानते है कि वह ईश्वर के पास जाकर उसके सदेश के साथ दुनिया मे वापस लौटते है, जगतोद्धार करते है, अवतार लेते है। आर्य-समाजी मानते है कि ईश्वर अवतार नही धारण करता।

ईश्वर याने सत्ता सामान्य। उसमे सत्ताविशेष विलीन हो जाता है। विलीन होने के बाद लौटे कैसे ? गगाजी मे मिली हुई बूद फिर ज्यो-की-

रयो कैसे लौटेगी ? बहुत हुआ तो पूर्व-विशेष और कई नये विशेष लेकर अगर कोई आविर्भूत हो और पूर्व के सत्ता-विशेष का अभिमान धारण करे तो उसे उस सत्ता-विशेष का अवतार मानना सभव है। उदाहरणार्थ, ज्ञानदेव का एकनाथ और नामदेव का तुकाराम। पर यह कल्पना पुनरावर्तन के समान हो गई। इसमे मुक्ति का अभाव मानना पडेगा। इसकी अपेक्षा यह कहना ठीक होगा कि ईश्वर ही अवतार लेता है, कोई भी मुक्त पुरुष दुबारा अववतार नही लेता। पर अरविंद का विचार भिन्न है। उनकी राय मे जीव मुक्त होकर फिर जगतोद्धार के लिए जगत् मे आविर्भूत होता है और ऐसे अनगिनत मुक्तो के अवतार हो सकते है। लडका पढ-लिखकर तैयार होता है तव वह वैसे ही बैठा नही रहता, खुद पढाने लग जाता है। ठीक इसी तरह जीव साधना द्वारा मुक्ति पाता है और दुनिया का मार्ग-प्रदर्शन करने फिर अवतीर्ण होता है। उसके इसी जन्म-कर्म को दिव्य जन्म-कर्म कहते है। इससे किसी भी प्रकार के वन्धन मे वह नही फस जाता। मुक्ति से पहले का जन्म और कर्म प्राकृत है और ससार का कारण होता है। लेकिन यह दिव्य जन्म-कर्म उस प्रकार ससार का कारण नही होता। यह कल्पना रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैततत्त्व के अनुसार दीखती है। अरविंद अपने ग्रथो मे हमेशा शकराचार्य का उल्लेख करते है, पर कही-कही रामानुजाचार्य का भी उल्लेख पाया जाता हे।

आर्यसमाजी मानते है कि ईश्वर अवतार ग्रहण नही करता। मैने कहा—जीव के मुक्त होने के समय अगर अपना कोई कार्य-सकल्प ईश्वर उसके साथ जोड दे तो क्या यह सभव है या नही ? तब उन्होने उसे मान लिया। वही अवतार क्यो न कहा जाय ? हर्ज क्या हे ?

मै—उसको हम अवतार नही कह सकते, क्योकि मेरी धारणा है कि अवतार मे अपने अवतार होने का मान अपेक्षित है, जैसे ईसा और मुहम्मद को था।

विनोबा—तो फिर उसके साथ ईश्वर का ज्ञानसकल्प भी जोड दिया जाय।

मै—मुझे ये सब ईश्वर-जीव-जगत् विषयक उत्प्रेक्षाओ-सी लगती है। वेदान्त के अनुसार यह सब अज्ञान है, मिथ्या कल्पना-मात्र है।

विनोबा—अंध तम॰ प्रविशति ये अविद्या उपासते ।
ततो भूय एव ते तमो ये उ विद्याया रताः ।।

उपनिषदो मे कहा ही है। जो अवतारो मे विश्वास करते है, वे अधेरे मे घुस जाते हैं और जो उसे मिथ्या मानते है वे और भी गहरे मे प्रविष्ट होते है। ऐसा कहना होगा। वास्तव मे जो है, उसका अस्तित्व मानना चाहिए।

तुलसीदास की कल्पना

तुलीदास ने विनयपत्रिका मे कहा है—'रीझे भक्ति देत, खीझे मुक्ति', भगवान् प्रसन्न होने पर भक्ति देता है, मतलब कि भज्य-भजक-भाव रखता है, द्वैत रखता है। क्रोधित होने पर मुक्ति देता है। उसके अनुसार 'मानस' मे वर्णित है कि राम के हाथो मारे जाने पर राक्षस मुक्त हो गये। लेकिन जो वानर राक्षसो द्वारा मारे गये थे उनपर इद्र द्वारा अमृतवृष्टि कराकर उन्हे फिर से जिलाया गया। वानरो के साथ राक्षस क्यो नही पुन जीवित हुए ? कारण वे मुक्त हो गये थे। मुक्त होने के कारण उनका पुनरुत्थान नही।

तुकाराम ने कहा है—जिसे जो भाता है नारायण उसे वह देता है—'आवडीचें दान देतो नारायण'। जो भक्ति की मिठास चखना चाहते है, उन्हे भक्ति दी जाती है। जो कूटस्थ नित्यब्रह्म की शाति चाहते हैं, पूर्ण निवृत्ति चाहते हैं, जैसा कि तुम कहते हो, उन्हे वह मुक्ति देता है।

अरविंद का 'सावित्री' महाकाव्य

अरविंदबाबू ने 'सावित्री' नाम का महाकाव्य अग्रेजी मे लिखा है। उसपर उन्होने जीवन भर परिश्रम किये। आखिर मृत्यु से पहले पूर्ण करने की इच्छा से उन्होने उसे जल्दी समाप्त किया। इस कारण कई लोगो का अभिप्राय है कि उसका आखिरी हिस्सा ठीक नही बन पडा है। उलटे कइयो की मान्यता है कि जल्दी मे समाप्त करने के कारण वह जोरदार बन पडा है। सावित्री जिस प्रकार यम के घर जाकर वापस आई, वैसे ही योगी सदेह अमरत्व प्राप्त कर सकता है, या मुक्त होकर जन्म ले सकता है। इस प्रकार

की पूर्ण योग की उनकी धारणा है, हालाकि तीन साल वह किडनी-मूत्रपिड के विकार से बीमार थे और उससे झगडते हुए परलोक सिधारे।

अग्रेजी पर भारतीयो की छाप

उनके इस काव्य की तथा 'लाइफ डिवाइन' ग्रथ की छाप अग्रेजी पर रहेगी। भारत के जिन लेखको ने अग्रेजी भाषा मे मूल्यवान रचना की है, और उस भाषा पर अमिट छाप छोड़ी है, वे है अरविंद, रवीद्र, गाधी और जवाहरलाल। पहले दोनो का साहित्यिक मूल्य है। आखिरी दोनो का वैयक्तिक मूल्य है। दक्षिण मे अग्रेजी का प्रसार बहुत है, पर अग्रेजी पर अपनी छाप छोडनेवाला स्थायी मूल्य का साहित्य किसीने लिखा नही। राधाकृष्णन् का नाम लिया जायगा। पर वह कोई तत्वज्ञ या स्वतन्त्र विचारक नही है। मराठी मे जैसे बापटशास्त्री या सदाशिव शास्त्री भिडे है, वैसे वे है। इतना तो कहा जा सकता है कि वह मुहावरेदार अग्रेजी मे लिखते है। सरोजिनी नायडू ने अग्रेजी मे थोडा-सा काव्य लिखा है, पर वह नगण्य-सा है।

मै—जे कृष्णमूर्ति का नाम लेना पडेगा। उनका लेखन साहित्यिक मूल्य भले ही न रखता हो, पर ऐसा लगता है कि उसके वैचारिक प्रभाव को स्थायी कहना पडेगा। क्या आप यह नही मानते कि अग्रेजी भाषा तथा जागतिक विचारधारा पर उनकी छाप है?

होल्ललू के मार्ग पर,
ता० ८-१२-५७

: २५ :

प्रश्नोत्तरी

ईश्वर की स्तुतिप्रियता

१ क्या ईश्वर स्तुतिप्रिय है, क्या इसे सद्गुण कहा जाय? अपने खिलौने से अपनी स्तुति की जाय, इसमे क्या रखा है?

—ईश्वर खुशामदखोर नही। पर जिसमे भक्त का हित है उसे करने

की प्रेरणा वह देता है। मा वच्चे को वावा, मा शब्द सिखाती है। उन्हे नहीसीख लेगा तो सिर्फ रोता ही रहेगा।

ईश्वर गुरु है

ईश्वर परम समर्थ है, तो भी वह कई लोगो को भक्ति करने की प्रेरणा देता है, कइयो को नही देता, ऐसा क्यो ?

वह सिर्फ जगदीश्वर नही, जगद्गुरु भी है। जीवो के विकास के लिए वह उन्हे स्वतन्त्रता देता है। ठोक-पीटकर उन्हे नही गढता। उन्हे सयाना वनाता है, पर अपने निजी अनुभव से। फिर हम देखते हैं कि सव वच्चे समान रूपसे वोलना नही सीखते। कई तो एक वरस के अन्दर ही वोलने लगते हैं, कई दो वरस के वाद, कई तो चार-चार वरस वोलते ही नही। इस प्रकार कोई भक्ति जल्द ग्रहण करता है, कोई देर से।

ईश्वर-दर्शन का अभ्यास

३ ईश्वर कहा है ? उसे कैसे पहचाना जाय ?

पहले ईश्वर कहा नही है यह देख लेना। ईश्वर अमगलता मे नही, वह निर्मल है, मगल है। वह निर्दयता मे नही है, वह दयालु है। इसलिए जो मगलमय है, दयामय है उसका सग्रह करना। तदितर छोड देना। जैसे आदमी कणश सोना सगृहीत करता है, वैसे जहा-जहा ईश्वरीय गुणो का आविष्कार प्रतीत होगा, वहा-वहा से उनका सग्रह कर लेना। वच्चा अलकार झट उठा लेगा, सोने का पत्थर फेक देगा। पर सुनार दोनो का मूल्य समान जानता है। इस प्रकार ईश्वर का परिचय पाने से दृष्टि सूक्ष्म हो जाती है और तव गन्दगी मे भी ईश्वर की झाकी मिल जाती है। वह गदगी नही, खाद है, मामूली खाद नही, सोनखाद है। यह ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार धीरे-धीरे सर्वत्र ईश्वर-दर्शन होता है। वह क्या थोडे ही लदन म्यूजियम मे है ? वह सर्वत्र विद्यमान है। उसे देखना सीखने की चीज है। उसका समग्र दर्शन सम्भव नही। वह विश्वरूप हम पचा नही पायेगे। कुन्ती को सूर्य ने दर्शन दिया, पर वह उसे वरदाश्त नही कर सकी। अर्जुन को विश्वरूप का दर्शन कराया। वह डर गया। कहने लगा, मुझे चतुर्भुज रूप दिखाओ।

इस प्रकार जहा-जहा ईश्वर का आविर्भाव दिखाई देता है वहा-वहा से उसे इकट्ठा करना चाहिए और इस तरह सब ईश्वरमय देखना सीख लिया जाय।

ईश्वर स्वयभू क्यो ?

४ ईश्वर स्वयभू कैसे ? उसे स्वयभू क्यो कहा जाय ?

सत्य का मूल उद्गम सत्य होगा या असत्य। तीसरा कुछ हो नही सकता। अब यह नही कहा जा सकता कि सत्य का उद्गम असत्य है। असत्य मे सत्य की उत्पत्ति नही होती। तो सत्य का मूल सत्य ही होगा। एक सत्य का मूल दूसरा सत्य, उसका तीसरा सत्य, इस प्रकार मानते चले जाय तो अन्त कहा होगा ? एक हरिदास था। कीर्तन के सिलसिले मे उसने कहा—सत्यभामा का पिता सत्राजित् था। तब एक श्रोता उठ खडा हुआ और बोला—आपने सत्यभामा के पिता का नाम बताया। पर उसके बाप का नाम क्या था ? उसपर वह हरिदास बोला—उसका नाम अठराजित्, उसका उन्नीसजित् आदि-आदि। उसी प्रकार यह हनुमान की पूछ बढती ही जायगी। लेकिन विशेष का उद्भव सामान्य से होता है, न कि सामान्य का विशेष से। 'गोत्व' सामान्य है। पर काली गाय, सफेद गाय, उसका विशेष है। विशेष अल्प और सीमित रहता है। गोत्व व्यापक है, बडा है। वह जाति है। इसी प्रकार से सत्ता-सामान्य से सद्विशेष उद्भूत होता है। पर सत्ता-सामान्य किसीसे उद्भूत नही होता। अगर माना जाय कि वह उद्भूत होता है तो वह परपरा अनत बन जायगी। उसमे कल्पना-गौरव के दोष की गुजाइश होगी। इसलिए परमेश्वर, जो सत्तादि सामान्य है, स्वयभू कहलाता है। स्वयभू याने स्वत वर्तमान, स्वत सिद्ध।

ईश्वर का वैषम्य तथा निर्घृणता

५ ईश्वर किसीको भक्ति देता है, किसीको नही देता, और जिसे भक्ति देकर अपनाता है उसे भी दु ख-कष्ट पहुचाता है—सो कैसे ?

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रिय·।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

ईश्वर समान है। न किसी पर कृपा करता है, न किसीको कष्ट देता है, अग्नि की भाति, जो उसके पास जाता है उसे उष्णता देता है। जो दूर रहता है उसे नही देता। इससे जैसे अग्नि मे दयालुता या निर्दयता नही होती, वैसे ही ईश्वर मे भी। तुकाराम जैसे भक्तवर को भी जो कष्ट सहने पडते है, वे विकास के लिए ही होते है। दखल देकर किसी को ईश्वर दु ख-मुक्त नही करता। उसे स्वतन्त्रता प्रदान करता है कि वह स्वय पुरुषार्थ हासिल करे।

देवकृत चमत्कार

६ कुवरबाईकृत नरसी मेहता का 'मामेरू' नरसी मेहता को ईश्वर ने सर्व प्रकार से द्रव्य-साहाय्य देकर उसकी लडकी के दोहदपूर्ण किये। क्या यह चमत्कार नही है ? देव इस प्रकार सहायता करता है ?

यह भावना का विषय है। भक्त मानता है कि सवकुछ देव ही करता हे। जो आस्तिक नही है वह ईश्वरीय कृपा की घटनाओ को आकस्मिक घटनाए मानता है। सव घटनाओ का कार्य-कारण-भाव हम नही समझ सकते, इसलिए हम उन्हे आकस्मिक कहते है। वास्तव मे वे सव यथा-स्थित होती रहती है। ईश्वरनिष्ठ की यह धारणा रहती है कि ईश्वर ही सवके मूल मे होता है, सवकी प्रेरणा वही है। अत वह कहता हे कि वे घटनाए ईश्वरकृत है।

मेरी ही वात देखिये—मै वेदो का अध्ययन कर रहा हू, वेदो पर कुछ लिखना चाहता हू। यह सुनकर एक मित्र ने मुझे एक जर्मन भाषा का कोश तथा व्याकरण भेज दिया। उनकी इच्छा यह थी कि जर्मन भाषा मे वेदो पर उत्तमोत्तम ग्रथ लिखे हुए है, उन्हे मै पढ लू। 'इस बुढापे मे यह सव करने की तकात आप मे है या नही, फुर्सत है या नही इसका विचार करते हुए मै इन्हे भेज रहा हू। इनसे आप चाहे जैसा काम ले'—उन्होने लिखा था। उसके वाद दो ही दिन बीते कि एक जर्मन लडकी मेरे पास आई और अठारह दिन रहकर चली गई। उसके साथ मै हर रोज एक घटा विताता था। अव कोश-व्याकरण की सहायता से मै पढ सकता हू। जव वह गई तव मै उससे वोला, "फिर जव आओगी तव हिदी ठीक पढकर आओ।" उसने

कबूल किया, और कहा—"आप भी जर्मन भाषा का अध्ययन बढाइये!" इस घटना को चाहे तो आकस्मिक कहा जा सकता है। पर मुझ जैसे के मुह से 'ईश्वरीय कृपा' के सिवा और क्या निकलेगा ?

ध्यान और क्रिया

७ आप कहते है कि कातते हुए ध्यान किया जा सकता है। वह कैसे किया जाय ? अरविंद स्वतत्र ध्यान बताते है, गाधीजी स्वतत्र कताई बताते हैं। आप कताई और ध्यान एकत्र बताते है। वह कैसे किया जाय ?

ध्यान के साथ सौम्य, परिश्रम-रहित क्रिया की जा सकती है। हम अभिषेक करते हैं। वह अखड क्रिया ध्यान के लिए पोषक बनती है। कताई करते वक्त जो धागा निकलता रहता है वह भी ध्यान की मदद करता है। हा, वह टूटे नही। कताई के समय ध्यान के साथ ही दृष्टि घूमती रहती है। इस कारण उसपर तनाव नही पडता। एकटक देखने से आखे थक जाती हैं। पर इस क्रिया मे नही थकती। कातते वक्त यह शरीरश्रम है, यह गरीबो से मिलाप है, आदि चितन किया जा सकता है। वैसा चितन या और किसी प्रकार का चितन न किया जाय तो वह ध्यान हो जाता है।

अध्ययन कब, कैसे, कौन-सा ?

८ अध्ययन कब किया जाय, कैसे किया जाय, कौन-सा किया जाय ?

रात को जो अध्ययन करते हैं उनके लिए तिगुनी प्रतिकूलता हुआ करती है, दिनभर की थकावट, पेट मे अन्न बोझ, और आखो को थकानेवाला जगमगाता दिया। इसलिए रात की पढाई अनुचित है। अध्ययन के लिए तीन समय अच्छे होते हैं—एक, नीद खुलने पर सवेरे, वामकुक्षी के बाद दोपहर, और बीच मे स्नान के उपरान्त। इन तीनो समय मे शाति और उत्साह रहता है। प नेहरू को काम के मारे समय नही मिलता। वह रात को १२-१ बजे सो जाते हैं। दोपहर को १॥ बजे पौनार के बुनकरो की भाति भोजन करते है और २॥ बजे फिर काम मे लग जाते हैं। इस प्रकार उन्हे फुर्सत नही मिलती। तो भी सवेरे करीब एक घटा यौगिक क्रियाओ मे बिताते है। इससे उनका अच्छा, लाभ ही हुआ है। तीन इच तक पेट घट

गया है।

अध्ययन लवा-चौडा न हो, पर गहरा रहे। एकाग्र होकर किया हुआ घटे-आध घटे का अध्ययन लवे अर्से तक किये अनेकाग्र अध्ययन की अपेक्षा बहुत अधिक लाभकारी होता है। ४-६ घटे गाढी नीद और ८-१० घटे करवटे वदलते रहना इनमे जो फर्क है, वही यहा भी है।

हम जो कार्य करते है, उसका अध्ययन किया जाय। उदाहरण के लिए तुम लोग भूदान-कार्य करते हो, तद्विषयक सपूर्ण साहित्य का अध्ययन, सव प्रश्नो का चितन ही तुम लोगो का कर्तव्य है। साथ ही चित्त-शुद्धि के लिए धार्मिक ग्रथो का भी अध्ययन करना चाहिए। गीताई है, गीता-प्रवचन है, और भी अन्यान्य ग्रथ है। अध्ययन से मन पावन होता है और काम का चितन-मनन करने से व्यवहार सुकर हो जाता है।

: २६ :

बुद्ध का मध्यमार्ग

विनोवा—क्या भगवान् वुद्ध ने कही कहा है कि मैने जो तपस्या की है, उसमे मेरी कुछ गलती तो नही हो गई ?

मै—मेरी पढाई मे ऐसा नही पाया गया है, तथापि अपनी तपस्या के अत मे जव उन्हे ज्ञान प्राप्त नही हुआ था तव उन्होने विचार किया कि शायद मै गलत मार्ग पर चल रहा हू। समाधिसुख इस मार्ग से हासिल नही होगा। वचपन मे जम्वू वृक्ष के नीचे मुझे जो समाधिसुख प्राप्त हुआ था, वह घोर तपस्या के कारण नही था। और इस विचार के कारण उन्होने फिर थोडा-थोडा अनाज खाना शुरू किया। साथ उनके पाच ब्राह्मण इस विचार से रहे थे कि यह ज्ञानी वन जायगा और इससे हमे भी ज्ञान प्राप्त हो जायगा। उन्होने समझा कि यह अव पेट के पीछे पड गया और उन्हे छोड-कर मृगदाव, याने आज के सारनाथ, जाकर रहे। इस प्रसग से लगता है तपस्या का मार्ग भगवान् वुद्ध ने छोड दिया।

विनोवा—पर उनने कहा—'खन्ती परमं तपो तितिक्खा, खन्त च

सयनासन', अर्थात् निवास गाव के वाहर रहे, निद्रा भी वाहर ही। इससे क्या अभिप्रेत है ? और क्या 'किसं धमनि संयतं' भी तपोरहितता का लक्षण है ? गाव मे रहकर मोक्ष नही, विना भिक्षु वने मोक्ष नही। इसका मतलव यही कि वुद्ध का मार्ग माध्यम मार्ग नहीं।

मैं—बुद्ध का मार्ग ससार-धर्म नही। उसका मध्यममार्ग गृहस्थ-धर्म भी नही। वह है भिक्षुओ का, श्रमणो-ब्राह्मणो का मार्ग। तो भी उन श्रमणो ब्राह्मणो मे एकान्तवादी, याने इस या उस छोर तक जानेवाले, लोग थे। पर बुद्ध वैसा नही था। वह उन दो छोरो के बीच था। इसी मध्य को ही उसने सम्यक् कहा है। वह सिर्फ बुद्ध नही था, सम्यक् सबुद्ध था।

हावनूर के मार्ग पर,
ता० ६-१२-५७

: २७ :

बुद्ध और महावीर

भिन्न दर्शन, भिन्न आचार

मैं—कल आपने कहा था, 'क्या बुद्ध ने अपनी तपस्या का निषेध किया है ?' इस विषय मे निषेध तो कही मैंने पढा नही तो भी उन्होने उस मार्ग का त्याग जरूर किया था। उसके बाद भी उन्होने तपस्या-मार्ग को अनुकरणीय नही वतलाया। इसके अलावा उन्होने अपने शिष्यो को भी वैसा तप करने का आदेश नही दिया। पर महावीर की वात अलग थी। ज्ञान-प्राप्ति के पहले भी वह तप करते थे और वाद मे भी तप करते रहे। उनका उपदेश भी कठोर तपस्या का है। महावीर ने इतने उपवास किये हैं कि उनकी सख्या छ -साढे छ वर्षों की होगी। 'सवर' और 'निर्जरा' उनके आदर्श शब्द हैं। इस अन्तर की जड मे, मुझे लगता है, उनके दर्शनो की भिन्नता ही है।

बुद्ध मानवतावादी, महावीर अहिंसावादी

विनोबा--ज्ञान-प्राप्ति के पूर्व की तपस्या समझी जा सकती है। पर ज्ञान-प्राप्ति के बाद भी अगर महावीर तपस्या करते रहे हो तो उसका कारण एक तो उन्हे ज्ञान प्राप्त नही हुआ हो, या वह तपस्या को ही मोक्ष मानते रहे हो। सब मानते है कि वह ज्ञानी थे। इसका अर्थ यही कि वह तपस्या को ही मोक्ष मानते थे। यह तप कारुण्य-मूलक है। भगवान् बुद्ध भी करुणावतार थे, पर दोनो की धारणाओ मे अन्तर था। भगवान् बुद्ध मुख्यत मानवतावादी है, महावीर भूतमात्र के लिए आत्यतिक करुणा की प्रेरणा लिये हुए है। यह करुणा यहातक जाती है कि मनुष्य का जीवन भी हिंसा ही है। इसलिए उनकी धारणा है कि खाना भी पाप-रूप है। जितना कम खाया जाय उतनी हिंसा भी कम होगी, इस विचार से यानी प्राणिमात्र के बारे मे सूक्ष्मातिसूक्ष्म करुणा से वह यथासभव निराहार ही रहते है।

सगुण या निर्गुण करुणा

बुद्ध ने यज्ञीय हिंसा का निषेध किया और कहना होगा कि उन्होने उसमे सफलता पाई। आज भारत से यज्ञीय हिंसा उठ गई है। महावीर के समय मे भी वह विद्यमान थी, पर ऐसे किसी स्थूल विषय मे उन्होने दखल नही दिया। वह केवल शुद्ध अहिंसा का उपदेश देते तथा तदर्थ निरन्तर तपश्चर्या करते रहे और इसीमे सन्तुष्ट रहे। महावीर की यह करुणा निर्गुण थी। मेरी राय मे महावीर की भूमिका उच्चतर है। मेरे मन का झुकाव उस ओर है, पर मैने बुद्ध के मार्ग का अवलब किया है। कुछ कार्य हाथ मे लेकर करुणा का प्रचार करना ही वह मार्ग है। बुद्ध की दया व्याकुल दया है।

बुद्ध का करुणा-साक्षात्कार

जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि आदि मानवी दुखो के शल्य ने उनके हृदय को वेध दिया था और उस शल्य को उखाड फेकने पर वह उतारू हो गये थे। तपस्या करते हुए बुद्ध को सुजाता हर रोज देखा करती थी। उनकी एक-

एक पसली दिखाई देने लगी, आखे अन्दर धस गई, शरीर पर शिराओ का जाल उभर आया। यह सब वह हर रोज देखा करती थी। उसकी आखे लगी हुई थी कि वह कब आखें खोलते है। चालीस दिन के अनशन के बाद ज्ञान प्राप्त करके जब उन्होने आखे खोली तब सामने ही पायस की कटोरी लेकर खडी सुजाता मूर्तिमती करुणा के रूप मे दीख पडी। वह बुद्ध की बोधि, वही सबोधि। तपस्या बुद्ध ने की, ज्ञान का साक्षात्कार हुआ सुजाता को। उसे देख बुद्ध की आखे खुली, करुणा का साक्षात्कार हुआ। दुनिया के दु ख पर वही अचूक दवा है। उसे लेकर उन्होने धर्मचक्र-प्रवर्तन किया।

बौद्ध और जैन धर्मो का अन्तर

बुद्ध का धर्म करुणा-मूलक, पर वैराग्य-प्रधान है। उनका क्षेत्र मानवता है। जैनो का धर्म भी करुणा-मूलक है सही, पर उसका क्षेत्र मानवता नही, समूचा जीव-जगत् है। उसमे न विह्वलता है, न खलबली। उसमे है तटस्थता।

सत्य प्रधान है या अहिसा ?

एक बार एक जैन सज्जन से चर्चा छिड गई। उनसे मैने कहा, "अहिंसा ठीक ही है, पर सत्य का भी कुछ विचार हो ? चीटियो को चीनी दी जाती है, पर व्यापार-व्यवहार मे धोखे-बाजी, झूठ, मक्कारी चलती है। यह क्या ?" उन्होने कहा, "अहिंसा ही धन है। सत्य को छोडकर भी अहिंसा का पालन करना चाहिए। गाधीजी की अहिसा और हमारी अहिंसा अलग-अलग है। गाधीजी सत्य को ही परम धर्म मानते है, हम 'अहिसा परमो धर्म' मानते है। उसके लिए कभी झूठ भी बोलना पडे तो कोई हर्ज नही। देखिये न महाभारत मे भी अपवाद बताये गए है।" सत्य का सीधा विरोध करनेवाला और अपना जैनशास्त्र छोडकर महाभारत का आधार उद्धृत करनेवाला जैन था वह।

न हि सत्यात् परो धर्मः

पर हम तो सत्य को ही परम धर्म मानते है। कहते है—'न हि सत्यात् परो धर्म·।' उसीमे से सब साधना निकलती है और उसीमे परिसमाप्त हो जाती है। वही तारक है। यहा एक चोर का किस्सा याद आता है।

एक बार एक साधु ने एक चोर को नसीहत दी कि तुम चोरी करते हो, ठीक ही है। चलने दो तुम्हारा काम। लेकिन उसके साथ एक बात करो। व्रत लो कि कभी झूठ नही बोलूगा। चोर को बडा आनन्द हुआ कि साधु महाराज ने मेरी जीविका को छुआ नही। उसने कहा, "महाराज, मै आपके उपदेश के अनुसार अवश्य चलूगा।" उस रात को चोरी करने वह बाहर चल पडा। राजा भेष बदलकर टहल रहा था। राजा ने पूछा, "कहा जा रहे हो?" अपने निश्चय के अनुसार उसने सच कहा, "चोरी करने।" "कहा?" "राजमहल मे।" राजा बोला, "तो मुझे भी साथ ले चलो। मैं पास ही रहता हू।" "हा" कहकर चोर गया। तिजोरी खोली। सामने ही तीन हीरे नज़र आये। उनमे से दो लेकर वह लौट पडा। राजा के पास आया। बोला, "वहा तीन हीरे थे, पर बटवारे मे कठिनाई होगी, इस विचार से मै दो ही लाया हू। यह लो एक।" यह कहकर वह चला गया। राजा ने उसका नाम और पता पूछ लिया था। सवेरे प्रधान राजा के पास चोरी की खबर लेकर पहुचा। कहा, "केवल तीनो हीरे गायब है।" प्रधान ने सोचा—दो हीरे गायब है, गलती से एक रह गया है। उसे अगर मैं हडप लू तो कौन जान सकता है? इस विचार से उसने वह हथिया लिया था और राजा से कह रहा था कि तीनो गायब है। राजा ने चोर को बुला भेजा। उसने राजा के सामने प्रधान से कहा, "निकालो तीसरा हीरा!" प्रधान को देना पडा। राजा ने प्रधान को जेल भेज दिया और चोर को अपने खजाने का अधिकारी बनाया।

होसरित्ती के मार्ग पर,
१०-१२-५७

: २८ :

कणिका—३

अपना काम

मै—जिस क्षेत्र मे हम काम कर रहे है, उसे छोडकर आना पडे तो क्या किया जाय ?

विनोवा—मा वालक को छोड कव जाती है ? जव कोई प्रतिनिधि उसकी हिफाजत के लिए मौजूद हो तव। वैसे ही जवतक उस कार्य की जिम्मेदारी सम्हालनेवाला नही मिलता तवतक छोड जाना अनुचित होगा।

पर जनता की सेवा करते रहना ही हमारा काम नही। हमारी सेवा की आवश्यकता न रहे, लोग अपने-अपने काम कर लेते है, ऐसा होना चाहिए। यही हमारा काम हे। एक सेवक के स्थान पर सेवक-ही-सेवक है, एक दूसरे की सेवा, गाव की सेवा, समाज की सेवा हो रही है। यह स्थिति अभीष्ट है। उससे हमारा काम रहेगा ही नही। **'कापुराची वाती उजलती ज्योति। ठाईं च समाप्ति झाली जैसी।'** अर्थात् 'कपूर की वाती वनाई, जला दी गई। उसने प्रकाश दिया और अपने मे विलीन हो गई।'

गाधीजी का उत्तराधिकारी

मै—गाधीजी ने जवाहरलालजी को अपना उत्तराधिकारी घोषित करके वडी गलती की है। हमारी धारणा है कि वास्तव मे आप ही उनके सच्चे उत्तराधिकारी है, क्योकि हम मानते है कि गाधीजी राजनैतिक नहीं, आध्यात्मिक पुरुष थे, और आपकी भी यही सम्मति है। इस वारे मे आप क्या सोचते है ?'

विनोवा—गाधीजी की दृष्टि अतर्राष्ट्रीय क्षेत्र की ओर थी। वह उनका कार्य शेप था। उनकी अपेक्षा थी कि जवाहरलालजी उस कार्य को अपनायेंगे। इस दृष्टि से उन्होने जवाहरलालजी को अपना वारिस जाहिर किया। यह है मेरी धरणा। वह कार्य जवाहरलालजी अपने ढग से कर रहे है। यह स्पष्ट है कि वह खादी-ग्रामोद्योग की तरफ भिन्न दृष्टि से

देखते है। गाधीजी इस बात को जानते थे। आर्थिक विषयो का तरफ देखने की दृष्टि उनकी अपनी अलग है, तथापि चाडिल मे हमारी मुलाकात होगई, उस वक्त से मै मानता हू कि ग्रामोद्योग विज्ञान-विरोधी नही, यह विचार उन्होने ग्रहण किया है। यह जो कहा गया है कि बापू को नही चाहिए था कि वह जवाहरलालजी को अपना वारिस बनाते, वह ठीक नही। बापू का वह तरीका था। मै तो उनका था ही। पर अपने उत्तराधिकारी के नाते जवाहरलालजी पर उन्होने यकीन रखा है। नि सन्देह वह उस विश्वास के योग्य ठहरेगे। अगर जवाहरलालजी की दृष्टि गाधीजी का दृष्टि से भिन्न है तो यह भी ध्यान मे लीजिये कि मेरी भी दृष्टि उनकी दृष्टि से भिन्न है।'

शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही

प्रश्न—एक बार हमारा एक मित्र विषम ज्वर से बीमार हुआ। पूरे ४२ दिन वह बीमार रहा। उस बीमारी ने उसके दिमाग तथा जबान पर असर डाला। सीखी बाते वह याद नही कर पाता था। अग्रेजी आदि सबकुछ वह भूल गया। बडी मुश्किल से वह बोल सकता था। जो कुछ वह बोल सकता था वह केवल मराठी, उसकी मातृभाषा मे। इससे जान पडता है कि मातृभाषा की छाप कितनी गहरी होती है।

उत्तर—शिक्षा के माध्यम के बारे मे मत-भिन्नता है। शिक्षा-शास्त्र की दृष्टि से मातृभाषा ही शुरु से अखीर तक शिक्षा का माध्यम हो, यह मेरी राय है। दादा धर्माधिकारीजी ने मुझे समझाने का प्रयत्न किया कि हिन्दी उच्च शिक्षा मे माध्यम रहे। मेरा मत-परिवर्तन वह नही कर सके। तब उन्होने विनोद बुद्धि से कहा, "मातृभाषा का मेरा अध्ययन आपके जैसा गहरा नही।" पर कहना चाहिए कि हालाकि दादा मुझे नही समझा सके, तो भी मुरारजीभाई ने मुझे अनुकूल बना लिया। वह बोले— "कॉलेज-प्रवेश से पहले विद्यार्थी का मातृभाषा-विषयक अध्ययन पूर्ण होना चाहिए। इस अध्ययन के साथ एक अनिवार्य विषय के तौर पर वे हिन्दी का भी अध्ययन करे। इस हालत मे क्या हर्ज है हिन्दी को उच्च शिक्षा मे माध्यम बनाने मे? विद्यार्थी का मातृभाषा का ज्ञान इस कारण से

अधूरा नही रहेगा। आगे भी उसका विशेष अध्ययन किया जा सकता है।" उनकी यह दलील मुझे विचार-योग्य जचती है। फिर भी शिक्षा-शास्त्र की दृष्टि से मातृभाषा ही माध्यम रहे, यह मेरा मत ज्यो-का-त्यो है।

अलावा इसके हिन्दी को माध्यम के रूप मे स्वीकार करने मे अनेक वाधाए हैं। प्रमुख अडचन यह है कि उसके साहित्य की अपेक्षा तमिल, मराठी, बगला भाषाओ का साहित्य अधिक समृद्ध है। वे भाषाए हिन्दी को माध्यम बनाने मे आपत्ति उठायेगी। राजाजी कहते है, हिन्दी को आवश्यकता है कि वह स्वय स्कूल मे जाय। उनका कहना है कि उसे समर्थ और सम्पन्न बनने दे।

रद की हुई किताब 'भगवान्'

किशोरलालजी मशरूवाला ने 'ईश्वर' पर 'भगवान्' नामक किताव लिखी थी। उसमे ईश्वर के सत्-चित्-आनन्द रूप को लेकर हरेक पद का तार्किक विवेचन उन्होने किया था। उसकी पाडुलिपि उन्होने अभिप्रायार्थ मेरे पास भेजी थी। मैने उसे पढा और कुछ प्रश्न पूछे। इस कारण उन्होने उसे प्रकाशित करने का विचार छोड दिया। मुझे लगता है कि उन्होने उस किताव को फाड डाला हो। उसके बाद जब वह मुझसे मिले तव बोले, "यदि मै विनोवा को नही समझा पाता तो औरो को क्या समझा सकता हू ? इस विचार से मैने उसे रद कर दिया।"

होसरित्ती के मार्गपर,
१०-१२-५७

: २९ :

योग और रोग-वियोग

योगी और रुग्ण मरण

मै—आपसे और वापू से वार-वार सुना है कि योगी रोग से नही मरने पाते। लेकिन यह कहातक ठीक है ? शकराचार्य, रामकृष्ण, अरविंद

आदि अनेक योगी पुरुष रुग्ण होकर चल बसे, यह इतिहास है।

विनोबा—योग दो प्रकार का है—१ द्वद्व मे चित्तसाम्य या सुख-दु ख-समता और २ योगयुक्त जीवन या नियमित आहार-विहारादि। पहला योग उच्च है।

शकराचार्य

पूर्व-जन्म के योगी शकराचार्य अवशिष्ट कार्य पूरा करने अवतीर्ण हुए थे। वह कार्य करते हुए उन्होने कभी खाने-पीने की परवा नही की और अपना कार्य झट पूरा करके वह चल दिये। छोटी उम्र मे विद्याध्ययन तथा आगे धर्म-कार्य के लिए घूमते रहे। ऐसी अवस्था मे खाने-पीने का प्रबन्ध ठीक कैसे हो सकता ? फलस्वरूप शरीर रोगी हो गया तो आश्चर्य क्या ?

रामकृष्ण

रामकृष्ण भी योगी नही थे। योग मे भावावेग के लिए स्थान नही। वह तो हमेशा भावाविष्ट हुआ करते। उससे आयु का क्षय होता है। डाक्टरो ने कहा था कि अत मे उनको बीमारी का प्रकोप होगा और उनकी मृत्यु होगी। पर रामकृष्ण बेफिक्र रहे। रोग के बावजूद वह आनदी रहे।

अरविद

अरविद के बारे मे आपत्ति उठाई जा सकती है। उनका योग दूसरे प्रकार का था। नियमित आहार-विहार जिस प्रकार का आवश्यक है, वैसा उन्हे प्राप्त था। इस योग-मार्ग से मानवदेह अमर हो सकता है, यह उनकी धारणा थी। लेकिन फिर भी यह रुग्ण होकर काल वश हुए, अर्थात् उनकी साधना अपूर्ण रही। पर उनके भक्त ऐसा नही मानते।

तिलक

तिलक पहले प्रकार के योगी थे। वह समसुखदु ख थे। बुढापे मे तिलकजी को छ साल की लम्बी सजा भुगतनी पडी। सब लोगो को इसका बडा रज हुआ। उन दिनो यह सजा अत्यन्त भयानक समझी जाती थी। पर शाम को तिलकजी मोटर मे दूर ले जाये गए। मोटर चलानेवाला था एक कट्टर अग्रेज़, जो तिलकजी से दिल से नफरत, गुस्सा करनेवाला था। लेकिन तिलक, सोने का समय आते ही, आठ बजे गहरी नीद सो गये।

उस नफरतभरे अग्रेज ने इस कारण उनका बड़ा गौरव किया है। इस प्रकार वह योग-युक्त थे, तो भी रोगवश हो कालवश हुए, क्योकि वह मन क्षोभ का शिकार हो जाते थे। आहार भी जैसा चाहिए था वैसा नही रहा करता।

गाधी

गाधीजी की मृत्यु ऐसी नही हुई। तो भी निराश होकर उन्होने १२५ वर्ष जीने का अपना सकल्प त्याग दिया था। वार-वार वह रक्त के दवाव से पीडित रहते, मन क्षोभ वहुत हुआ करता। मगनलाल गाधी, जमनालालजी और महादेवभाई देसाई को अपना कार्य-भार सौप देने का उनका विचार था। पर इन तीनो से उन्हे निराश होना पडा। पर जवाहरलालजी ने उन्हे धोखा नही दिया।

विनोवा

प्रभुदास ने लिखा है कि गाधीजी का १२५ वर्ष जीने का सकल्प मै पूरा करू। पर मै भी भावावेश मे आया करता हू, जिसके कारण मै अपने को नालायक ही समझता हू। ऐसा होते हुए भी श्रीहरि की इच्छा से जो होना हो सो होगा। कोई भी सकल्प मै नही करता।

होसरित्ती के मार्ग पर,
१०-१२-५७

: ३० :

वेद और वैदिक ध्यानयोग

आधुनिक उपासना

मै—प्रार्थना के साथ कताई मुझे एकदम पसद है। आधुनिक युग के अनुसार वह वैदिक उपासना ही है। यज्ञ मे जिस प्रकार मन्त्रोच्चार के साथ हवन होता है, वैसे यहा ईश्वर-स्मरण के साथ कताई। मत्र के साथ तत्र। उपासना मे मानसिक, वाचिक तथा कायिक क्रियाए एकत्र हो गई है।

वेद का कवच

विनोबा—वेद की दृष्टि समग्र है। वह एक परिपूर्ण योजना है। वेद मे कर्मयोग, ध्यानयोग, भक्ति-योग पाया जाता है। ज्ञान तो है ही। पर वेद पर एक कवच है। उसे हटाकर देखे बिना उसका गूढ भाव प्रकट नही हो पाता। 'छंदासि यस्य पर्णानि' वेद का रहस्य मत्र के कवच मे निगूढ है। गीता का कवच युद्ध है। तिलकजी उसे ऐतिहासिक घटना मानते है तो गाधीजी रूपक। उस कवच का भेद किये बिना गीता का रहस्य हाथ नही आता।

वैदिक ध्यानयोग

ब्राह्मण-ग्रथो ने कर्मकाड पर बल दिया। फल यह हुआ कि आगे चलकर आरण्यको तथा उपनिषदो ने ज्ञानकाड को वेद का सार, वेदान्त, मानकर उसका प्रतिपादन किया। वेद के ध्यान-उपासनायोग का प्रणेता हिरण्यगर्भ है। वैदिक ध्यानयोग लोगो की समझ मे नही आता। इन्द्र, मित्र, वरुण इत्यादि ध्यान ही है। गीता का विभूतियोग और विश्वरूपदर्शन-योग वेद से ही ग्रहण किया है। वेद परिपूर्ण जीवन-दर्शन है। वेद मे जितने आध्यात्मिक विविध अनुभव प्रकट हुए है, उतने और कही भी नही मिलते। सत तुकाराम मे भी जितने अनुभव पाये जाते है, उतने अन्यत्र नही मिलते। तो भी वेद के अनुभव, भूमिकाए, चिंतन अति सूक्ष्म है। मा कहा करती—"जले वराह, अरण्ये नारसिंह, श्रीराम सर्व कर्मसु।" उसी प्रकार वैदिक ध्यानमत्र विशेष अर्थ धारण करते है। भिन्न-भिन्न देवता विशिष्ट ध्यान-प्रतीक है। आज हम प्रेम, दया, करुणा आदि का आवाहन करके उनका ध्यान करते है। वेद मे वही पाया जाता है। 'मित्र' कहने से परमात्मा सर्वत्र भिन्न रूप से व्याप्त हे यह ध्यान-प्रतीक है। 'गौरसि गव्यते, अश्वं अश्वायते भवान्'—'हे इन्द्र, हे परमात्मन्, तुम्ही गौ हो, गोरूप से हमे दूध देते हो, तुम्ही अश्व हो, अश्व बनकर पीठ पर हमे वहन करते हो, और इष्ट स्थान पर पहुचाते हो।' यह वेद मे कहा है। कई लोग इसका अनुवाद करते है—तुम गाय मागनेवाले को गाय देते हो, घोडा मागनेवाले को घोडा। इस प्रकार वेद अति सूक्ष्म अर्थ धारण करते हे। वेद-दृष्टि गूढ हे।

वेदो की महत्ता

कतिपय लोग वेदो मे इतिहास खोजते है, कई भूगोल, खगोल आदि देखते हैं। पर वेदो की महत्ता इन बातो मे नही। दस हजार साल पहले की मारवाडी की बही मिल जाय तो इतिहास की दृष्टि से उसका बडा मूल्य होगा। पर वेद की महत्ता आध्यात्मिक ज्ञान की दृष्टि से है। 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्य ।' वेद और गीता मे ऐसे वचन है। इसी दृष्टि से उनका अध्ययन इष्ट है। अन्यान्य दृष्टियो से अगर कोई वेदो से कुछ निकाल ले तो हर्ज ही क्या? पर वह वेदो का सार नही होगा।

वैदिक भाषा की सूक्ष्मता

वैदिक धातुए और शब्द सूक्ष्म अर्थ का वहन करते है। सस्कृत के शब्दो मे भी सूक्ष्मता है, पर वैदिक शब्दो मे अधिक सूक्ष्मता है। तुमने लिखा था कि अग्रेजी मे भी किसी हद तक इस प्रकार की सूक्ष्मता और व्युत्पत्ति पाई जाती है, 'ससीम एंड लिलीज' नामक रस्किन की किताब मे वह नजर आती है, मिल्टन के काव्य मे भी व्युत्पन्न विद्वत्ता के दर्शन हो जाते है। लैटिन भाषा मे भी सूक्ष्म अर्थ विद्यमान है। पर हर शब्द की व्युत्पत्ति धातु से है, यह सस्कृत की दृष्टि अन्य भाषाओ मे उस कदर नही पाई जाती। लैटिन और अरबी भाषा मे ऐसी आशिक दृष्टि तथा शक्ति है। उदारणार्थ 'धा' से धान्य। अग्रेजी मे नाम-धातुए बहुत है, पर सस्कृत की यह दृष्टि रही है कि हर शब्द का व्युत्पादन धातु से किया जा सकता है। धातु ही शब्द-मात्र के मूल मे है। धातुओ के समान कई सज्ञाएं भी मूलत सिद्ध मानी जा सकती है, पर सस्कृत की वह दृष्टि नही।

वेद इतिहास-ग्रथ नही

वेदो मे कालातीत विचार ग्रथित है। केवल दिक्कालावच्छिन्न विचार नही। हमपर तो यही आक्षेप उठाया जाता है कि हमने इतिहास नही लिखा। हमने इतिहास इसलिए नही लिखा कि हमने उसे कभी महत्त्वपूर्ण माना नही। क्या वेद 'भाऊसाहब की बखर' के समान है? अगर वह वैसा होता तो हम उसे रट-रटकर कठस्थ कर डालते। कहते है कि वेदो मे आर्य

और द्रविड, पणि और देव के बीच के विग्रह का इतिहास है। होगा भी शायद, पर वेद उसके लिए नही है।

उपनिपदो ने वेदो को वचाया

मीमासको ने वेदो को केवल कर्मकाड मान लिया। उसमे से उपनिपदो ने वेदो को उवारा। वेदो को गौणत्व प्रदान किया। गीता ने भी वेदो को वैसा ही गौणत्व दिया है, क्योकि गीता वेदान्त ग्रथ है, ब्रह्मविद्या है। अत मे वेदो का सन्यास भी उपदिष्ट है। **'अत्र माता अमाता भवति, पिता अपिता, वेदा अवेदा'** आदि **'वेदानपि संन्यसति।'** वह जो आत्मज्ञान है, वही वेदो का सार है, वेदान्त है। वेद इसीमे परिसमाप्त होते है।

ग्रामदान के शास्त्र के लिए

इस दृष्टि को लेकर ऋग्वेद की दस हजार ऋचाओ मे से एक हजार ऋचाओ का चुनाव करना है। दूसरा यह भी विचार है कि एक समूचा मडल लेकर उसपर कुछ लिखू। वेदार्थ कैसे निकाला जाता है, और मेरी दृष्टि उस विपय मे कैसी है आदि वाते उसमे प्रकट हो जायगी। उपनिपदो पर 'उप-निपदो का अध्ययन', 'ईशावास्यवृत्ति' गीता पर 'गीताई' तथा 'गीताप्रवचन' प्रकाशित हुए है। भागवत का सचयन हुआ हे। वेदो की सेवा करना चाहता हूं। अवसर की ताक मे हू। धम्मपद तैयार ही है। कुरान मे से भी चयन करने की चाह हे। उसमे सव लोगो को नित्य-पठन के लिए कुरान का सार मिल जायगा और उससे परिचय वढेगा। वाइविल से चयन नही होगा, क्योकि वह ग्रथ सुपरिचित है। शकराचार्य के प्रकरणग्रथो से 'गुरुवोध' वना है। उनके भाष्य से भी चयनिका वनाने का विचार है। मराठी सतो के चयन तैयार हैं। रामदास से भी चुनाव जल्द किया जायगा। तुकाराम का सार-ग्रथ वन गया है, पुराना चयन उपलव्ध हुआ है। यह सव चयन भूदान-ग्रामदान विचार को पूर्णता प्रदान करेंगे। भूदान-ग्रामदान का शास्त्र-ग्रथ वनाना है।

सिद्दापुर के मार्ग पर,
११-१२-५७

: ३१ :

पद-यात्रा की झांकी

चर्चा-रस

आज रास्ता कच्चा ही था। अत. जयदेव ने सुझाया कि पर्याप्त प्रकाश के फैलने तक चर्चा शुरू न की जाय। हालाकि विनोबाजी चर्चा चाहते थे, तो भी मैने चर्चा नही शुरू की। परसो तो बीच मे दो बार जयदेव ने बताया कि रास्ता खराब है, चर्चा बाद मे की जाय, पर विनोबा ने कोई जवाब नही दिया और चर्चा जारी रखी। वह जब तीसरी बार बोला, तब विनोबा बोले—

"चर्चा के चलने पर भी मार्ग तय करने मे कोई रुकावट नही आती।" यह कहकर वह मेरे साथ बोलते ही रहे। विषय अतीव रसप्रद था। हर रोज सवेरे भी जो यह हमारी चल-चर्चा चलती है वह बडी दिलचस्प होती है। यद्यपि हम दो ही बोला करते है, तो भी और लोगो को यह अतीव भाती है।

हेसरूर का स्वागत और सभा

आज रास्ते मे एक गाव पडा, जिसका नाम हेसरूर है। वहा श्री भीमाचार बटवी ने बडा सुन्दर आयोजन किया था। समूचा गाव समार्जित किया गया था, बदनवार आदि से सजाया गया था। स्त्री-पुरुष और बच्चे स्नानादि मे निवृत्त होकर सुन्दर वस्त्र पहने सभा मे इकट्ठे हो गये थे। सभास्थान मे विनोबा के लिए उच्चासन की आयोजना की गई थी। तीस-चालीस महिलाए आरती के थाल लिये कतार मे खड़ी थी। थाल मे दो-दो फूल-बत्तिया जल रही थी। मगल कलश भी थे। कलशो मे पानी और नागवल्ली दल थे। अक्षत तथा कुकुम साथ थे। वह एक दीपावली ही स्वागत वितरण कर रही थी। एक ओर स्त्रिया, दूसरी ओर पुरुष, और उनके साथ होड करती हुई आसमान मे तारका-मडली दिखाई दे रही थी। विनोबा के सभा-स्थान पर पधारते ही स्त्री-पुरुषो ने मिलकर 'जय जगत्' का नारा बुलद करके उनका स्वागत किया। फूलो की तथा सूत की मालाए अर्पित की गई। वह दृश्य बडा मनोहारी था। साधु-सत जब घर आते है, तभी दिवाली-दशहरे

के सच्चे त्योहार होते है, इस आशय की मराठी कहावत का मानो वह प्रत्यक्ष प्रमाण था। विनोवा ने खडे-खडे ही उनको भूदान का सदेश थोडे मे सुनाया। कहा—

"अगर सवको खाना-पीना, कपडा-लत्ता, शिक्षा-दीक्षा मिलनी चाहिए तो ग्रामदान की आवश्यकता है। हवा और पानी पर जिस प्रकार किसीका एकाधिकार नही, किसीकी मालकियत नही, वैसा ही जमीन के वारे मे होना चाहिए। हवा और पानी के समान ही जमीन भी भगवान् की देन है और इसलिए सवको समान रूप मे मिलनी चाहिए।"

इसके अनन्तर फिर 'जय जगत्' का घोप हुआ और यात्रा आगे वढी।

पाठशाला मे पडाव

८॥ से ९ के लगभग हम शिगली पहुच गये। शिगली एक अच्छा गाव है, जिसकी आवादी पाच हजार है। एक मिडिल स्कूल मे हमारा पडाव रहा। प्रवन्ध ठीक था। इधर अधिकाश स्थानो मे हमारा पडाव पाठशाला मे ही रहा करता है। चालीस-पचास आदमियो के एक साथ ठहरने के लिए अन्य जगह कहा ? पाठशाला अक्सर गाव के वाहर या एक छोर पर रहती है। इससे खुली जगह और अहाता अक्सर हुआ करता है।

मुकाम पर

मुकाम पर पहुचने के वाद पहले हाथ-मुह धोकर नाश्ता किया जाता है। नाश्ते के लिए सूजी और कषाय मिलता है। यह कपाय मुझे वडा अच्छा लगा। धनिया, गुड, सोठ और थोडा दूध मिलाकर यह कषाय वनता है। दक्षिण मे सर्वत्र इसका प्रचलन है। चाय आदि पेयो के वदले पीने लायक यह चीज है। इसके वाद सामान का करीने से लगाना, स्नानादि से निवृत्त होना आदि काम रहता है। स्नान और कपडो की धुलाई के लिए अनेक वार नदी, तालाव, कभी-कभी कुए का सहारा लेना पडता है। होसरित्ती मे हम वरदा नदी पर नहाने गये थे। इधर अनेक गावो मे तालाव पाये जाते है, वैसे पानी की कमी ही है। स्नानादि से निवटकर और कपडे सुखाकर जो समय वच जाता है, उसे लेखन-पठनादि के काम मे लाया जा सकता है।

वर्ग और पाठ

११ बजे विनोवा कार्यकर्ताओ का वर्ग चलाते है। हाल मे सर्व-सेवा-सघ की ओर से हर प्रात मे वहा के आठ-दस सेवको की टोली एक हफ्ते के लिए शिक्षार्थ बुलाई जाती है। यह उपक्रम वडा अच्छा है। उससे दोनो ओर लाभ होता है। विनोवा कार्यकर्ताओ से परिचय पाते है, कार्य-कर्ता लोग अपनी शकाओ का समाधान करा ले सकते है। इस वर्ग मे विनोवा अत्यत मौलिक विवेचन किया करते है। वर्ग के अनतर तुलसी रामायण तथा गीताई का पाठ चलता है। रामायण का दोहान्त या छन्दान्त हिस्सा गाया जाता है। सामान्यतया इस हिस्से मे दस-बारह चौपाइया और एक दोहा और कभी-कभी एकाध छद हुआ करता है। गीताई का पारायणकाल २१ दिन का रहता है। दूसरे, ग्यारहवे और अठारहवे अध्याय के दो-दो हिस्से करके हर हिस्सा एक दिन पढा जाता है। वाकी पद्रह अध्यायो के लिए पद्रह दिन, इस प्रकार का क्रम रहा करता है। गोपुरी मे २५ दिन का पारा-यणकाल रखा है। उसके वदले यह २१ दिन का पारायण शुरू करने लायक है। पहले एक समय वह था भी। गोपुरी मे प्रात प्रार्थना मे वहुत ही कम लोग आते है। अत यहा की भाति (रामायण) गीताई पाठ को सवेरे की प्रार्थना से हटाकर दोपहर कताई के वक्त रखा जाय, यह विचार मन मे उठता है। १२ वजे यह कार्यक्रम खत्म हो जाता है। कभी विनोवा रामायण के वारे मे वोलते है।

तुलसीरामायण मे अन्वेषण

परसो विनोवा ने तुलसीरामायण के वारे मे अपनी खोज वताई। जहा-जहा रामायण मे सीता और राम का वियोग है, वहा-वहा तुलसीदास ने सक्षिप्तता से काम लिया है और जहा वे एकत्र है, वहा विस्तार को अप-नाया है। सीताराम तुलसीदास के आराध्य है। वह चाहते है कि वे दोनो इकट्ठे ही रहे। वाल्मीकि रामायण मे यह दृष्टि नही। अरण्य-काड, किष्किधा-काड, सुदर और युद्ध-काड वाल्मीकि ने विस्तार के साथ कहे है, पर तुलसीदास उन्हे थोडे मे कह गये है। वालकण्ड भी सक्षेप मे ही वर्णित है। वालकाण्ड की प्रस्तावना को छोड देना चाहिए, क्योकि वह तुलसीदास

की अपनी मौलिकता का विषय है, रामायण या रामचरित का अश नही।

विश्राम और सूत्र यज्ञ

१२ से २॥ तक भोजन और विश्राम, २॥ से ३ सूत्र-यज्ञ। सूत्र-यज्ञ के समय कुछ पठन होता है। उसका अत संक्षिप्त प्रार्थना से होता है। प्रार्थना के श्लोक ये हैं—

योन्त प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां
संजीवयत्यखिलशक्तिधर. स्वधाम्ना।
अन्याश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्
प्राणान् नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम्।
असतो मा सद् गमय
तमसो मा ज्योतिर् गमय
मृत्योर् मा अमृत गमय।

इसके बाद ३ से ५ तक लोग अपने-अपने हिस्से के काम निवटा लेते हैं। स्थानिक कार्यकर्ता भूदान-ग्रामदान कार्य के लिए जाते हैं। कभी-कभी इस अवधि मे विनोवा के साथ कार्यकर्ता, प्रतिष्ठित लोग, व्यापारी, विद्यार्थी आदि मुलाकात, चर्चा या सभा मे हिस्सा लेते हैं। होसरित्ती मे बेसिक ट्रेनिंग कालेज, धारवाड के ४० छात्र आये थे। उनके सामने विनोवा का वडा सुदर भाषण हुआ। छात्रो के सवाल थे—शिक्षा मे अंग्रेजी का स्थान हो या नही, आदि। विनोवा ने उनके उत्तर दिये। अन्यत्र व्यापारियो की सभा थी।

झिगली,
१२-१२-५७

: ३२ :

अप्पा से चर्चा—१

विनोबा की कार्याध्याय-सगति

आज हमारी पदयात्रा ६ बजे प्रारभ हुई। गतव्य स्थान ६-७ मील के फासले पर ही था। कल पूज्य अप्पासाहब विनोवा से मिलने आये है। आज सवेरे ५॥ बजे उनके लिए समय दिया था। यानी पहले से ही उनके साथ विनोवा वात कर रहे थे तो भी तय किये अनुसार विनोवा ६ बजे चल पडे और 'श्रीमद् रमारमण गोविदो हरि' कहकर यात्रा जारी की। हमारे साथ हाल मे बगाल की प्रथम टोली है। दो दिन उन्होने चलना शुरू करते समय गाने का उपक्रम जारी किया है। आज भी वे गीत गाते हुए निकल पडे। गाव से बाहर आने पर विनोबा ने 'शाति' कहकर उन्हे चुप कराया। फिर अप्पा से चर्चा शुरू की।

जबतक बापू थे

विनोबा बोले—जबतक बापू थे तबतक मै एक स्थान पर गडा हुआ-सा काम करता था। बरसो तक मैने रेल इस्तेमाल नही की। वैसे ही पास-पडोस के गावो को छोड कही पैदल भी नही घूमा। ३० साल तक रचनात्मक कार्य करता रहा।

बापू के बाद

लेकिन बापू के चल बसने पर स्थिति बदल गई। प्रारभ मे ही हिसा उबल पडी। स्वराज्य-प्राप्ति के साथ ही हिंदू-मुसलमानो के बीच भयानक हत्याकाड मच गया। इस अवस्था मे सवाल यह उठा कि अहिसा कैसे बचेगी। परिस्थिति का भान हुआ। चालीस-चालीस लाख लोगो का पूर्व-पश्चिम पाकिस्तान से आवागमन हुआ। करीब एक करोड आबादी का स्थलातर हुआ। हिन्दुस्तान की शासनप्रणाली अधिक मजबूत, अतएव स्थिर होने के कारण इधर अधिक लोग आ गये।

शरणार्थी और हरिजन

पश्चिमी पाकिस्तान से जो हरिजन पजाब मे आकर बस गये उनकी हालत बडी दयनीय थी। उनके पास वहा भी जमीन नही थी, और यहा तो वह सवाल ही नही था। सवर्ण हिन्दू, जिनके पास वहा जमीन थी, बडे जमीदार थे। इधर से जो मुसलमान उधर गये वे वैसे नही थे। उनकी जमीन यहा थोड़ी-सी थी। वह किसे दी जाय? सवर्ण हिन्दुओं का दबाव सरकार पर बहुत था, इसलिए उन्हे जमीन दे देना सरकार ने तय किया था। किन्तु जवाहरलालजी को यह बात पसद थी कि जमीन हरिजनो को दी जाय। सरकार के सामने यह जटिल समस्या थी। सिवा इसके वल्लभभाई का रुख और था। उन्हे जवाहरलालजी की नीति पसद नही थी। रामेश्वरी नेहरू ने कहा, "अब आप नया प्रबध कायम करना चाहते है तो चूकि पहले हरिजन भूमिहीन थे, इसलिए वही अन्याय जारी रखने की आवश्यकता नही। उन्हे जमीन मिलनी चाहिए।" जवाहरलालजी को यह उचित जचा। इसके अलावा मैंने कहा, "वहा हरिजनो के मालिक थे, जिनकी नौकरी मे वे ज्यो-त्यो करके अपनी गुजर-बसर करते थे। यहा क्या है? इस कारण से भी उन्हे जमीन मिलना उचित है।" आखिर राजेन्द्रबाबू की उपस्थिति मे पजाब सरकार ने हरिजनो को भूमि देने की बात मजूर की। वह शुक्रवार था। उस दिन के प्रार्थना-प्रवचन मे मैंने पजाब सरकार को बधाई दी। लेकिन उस निर्णय पर अमल नही हुआ। कहा गया कि किसी भी हालत मे हरिजनो की माग पूरी नही की जा सकती। रामेश्वरी नेहरू को बडा दु ख हुआ। पर चारा ही क्या था! सत्याग्रह भी उस हालत मे असभव था। दिल्ली छोडकर मै वापस आ गया।

शिवरामपल्ली मे

परधाम मे काचन-मुक्ति के प्रयोग का सूत्रपात किया गया। वर्ष-सवा वर्ष तक वह चलता गया। बाद मे मै शिवरामपल्ली गया। वहा से तेलगाना मे। वहां पोचमपल्ली मे जब जमीन मिल गई और हरिजनो की माग पर मिल गईं, उनकी माग पूरी हो गई। पजाब की याद आ गई। मन मे विचार आया कि यही सिलसिला जारी रखा जाय। लगा कि उसे जारी

न रखना कायरता होगी। वह सिलसिला तेलगाना मे ठीक चला। किसको यह भरोसा था कि वह चलेगा ? तेलगाना के वातावरण के कारण, वहा की विशिष्ट परिस्थिति की बदौलत, वह आशादायी हो गया। तो भी यह धारणा थी कि अन्यत्र वह सफल होगा ही सो बात नही। परधाम लौट आया।

नेहरूजी का निमत्रण

काचन-मुक्ति का प्रयोग जारी थी। मेरे रहने से उसे बल मिलेगा, इसलिए मै रह जाऊ तो ठीक होगा, यह थी उनकी इच्छा। चार महीने ठहर गया, पर मैने कह दिया कि ठहर नही सकूगा। प्लॉनिंग कमीशन की आलोचना मैने की थी, इसलिए नेहरूजी का निमत्रण चार महीने की अवधि खत्म होने से पहले ही मिला। उन्होने लिखा था—"चर्चा करनी है, अत जल्दी आइये, और फुर्सत लेकर आइये।" मैने उन्हे लिखा कि मै पैदल ही आ रहा हू, इसलिए जल्दी न् रहेगी।

दिल्ली मे

भूदान पाते-पाते दिल्ली गया। खादी और ग्रामोद्योग हमारे वॉर पोटेन्शल्स् है, कल युद्ध छिड जाने पर देश मे जनता बिना उनकी सहायता के टिक नही सकेगी, आदि दलीले पेश की। अहिंसा को आधार नही दिखाई दे रहा था, वह अब मिल गया। सबके प्रपच की चिंता करना ही परमार्थ साधन है, यह आपका कहना मुझे मजूर है। इसमे 'सब' शब्द महत्त्व का है। अपने-पराये का भेद यहा मुमकिन नही। अपनो मे सिर्फ ब्राह्मण ही नही, हरिजन भी शामिल है, यह ठीक है। लेकिन इतने से काम नही चलेगा। आपका नेशनलिज्म यहा काम नही आयेगा। इसलिए मैने 'जयहिंद' की जगह 'जय-जगत्' मत्र अपनाया है। पार्लमिंट मे फौजी बजट पर चर्चा नही होती, मागे बिना चर्चा के ही तुरत मजूर होती है। हमारा नेशनलिज्म पाकिस्तान के डर पर खडा है। एक बार मै पडितजी से बोला—"आपका अर्थ-सकल्प, आपकी योजनाए आप तय करते है या पाकिस्तान ?" इसपर पडितजी बोले—"पाकिस्तान का बजट बनानेवाले ही हमारा बजट बनाते है।"

शाति-सेना का विचार

अब केरल मे भूमि-समस्या वडी तीव्र है। फी आदमी ½ एकड भूमि वहा है। एक वर्गमील मे १००० तक आवादी है। इसलिए वहा के आदमियो को वाहर जाना चाहिए। कोई भी कही भी जा वस सकता है, ऐसा होना जरूरी है। पर यह विना अहिंसा के सभव कैसे ? प्लानिग मे उसका समावेश कैसे हो ? इसीलिए शाति-सेना की बात सोची। ऐसा होना चाहिए कि स्थान-स्थान पर सेवक मौजूद हं। अन्य समय मे वे सेवा-सैनिक वनेगे, खादी-ग्रामोद्योग का काम करेंगे, लोगो से मिल-जुलकर रहेगे। प्रसग पडने पर शाति स्थापना करेगे। अगर आज शाति-सैनिक होते तो रामनाथपुरम् मे दगा न होता। वाद मे जी रामचन्द्रन् और साथियो ने वहा काफी काम किया है। इसका असर पडितजी पर अच्छा हुआ है। उन्होने बताया भी, "पुलिस की आवश्यकता क्यो रहे ? पीसब्रिगेड्स—शातिसेनाए—यह काम करें।"

गाधीजी के बाद हमारा काम

अब गाधीजी नही रहे। अत हम जो ५-५०, अधिक-से-अधिक १०० गाधीजी के अनुयायी है, उन्हे चाहिए कि वे अहिंसा-प्रचार का काम करे। अकेले गाधीजी हम ५० आदमियो से भारी थे। अगर गाधीजी होते तो येलवाल के लिए छ साल नही लगते। अत हम जो गाधीजी के आदमी हैं, उन्हे चाहिए कि इसी काम मे लग जाय। इसके विना यह काम नही होगा।

ग्रामदान ही नीव

ग्रामदान से भू-समस्या हल हो सकेगी, ऐसा आभास पैदा किया गया है। इस कारण कम्यूनिटी प्रोजेक्टवाले अब कहने लगे हैं कि ग्रामदानी गावो मे ही हमारा काम सभव है, क्योकि अन्यत्र कम्यूनिटी है कहा ? वहा सारे इडिविज्युअल्स हैं। डे साहव कहते थे—हमारे कार्य से गरीबो को सीधे मदद नही पहुचती। मदद को अपनी तरफ रखनेवाले जो धनवान या मध्य-वित्त लोग है वे ही हमसे लाभ उठाते है। इसलिए ग्रामदान और शाति-सेना दोनो पर वल देना चाहिए। इन दोनो के बीच ग्राम-स्वराज्य आता है। पर

हमारी ताकत सीमित है। हम व्यक्तिगत रूप से आदर्शों का पालन कर सकेंगे और सार्वत्रिक प्रचार भी पर चार देहातो को लेकर ग्राम-स्वराज्य का काम सभव नही। ईसा, मुहम्मद ने यही किया था। दस-बारह ग्रामदान लेकर उनकी समस्याए हल करने बैठना व्यक्तिगत गृहस्थी चलाने जैसा है। लोगो की गृहस्थी चलाना मेरा काम नही। वह काम ब्रह्मा, विष्णु, महेश के जिम्मे है। सोचिये, आप कौन है ? अब ग्रामदान पाकर कम्यूनिटी प्रोजेक्ट का प्रयोग करना हो तो किया जा सकता है। पर उसका नतीजा होगा दुनिया की प्रगति को रोक रखना।

काम का घेरा काटकर चला

जेल से मुक्त होकर गोपुरी मे रहा। साम्ययोग का प्रयोग किया जा रहा था। लोग बोले, "अब इसे आप ही चलाइये। हम नही चला सकते।" मै तीन महीने वहा रहा, लेकिन मैने बताया कि मै उस काम मे फसकर नही रह सकता। आप नही कर सकते तो दूसरे करेंगे।

स्वावलम्बन भी घेरा

अप्पासाहब—हमारा आदर्श है शोषणरहित समाज की स्थापना करना। स्वावलवन हमे सिद्ध करना होगा। अपना आदर्श हमे सिद्ध करना ही चाहिए।

विनोबा—यह भी एक अहता ही है कि हम स्वावलम्बन का अपना आदर्श सिद्ध करेंगे। मुझे चार सेर दूध की जरूरत है। अब यह क्या बिना शोषण के मिलेगा ? उसमे स्वावलम्बन करने बैठू ? उससे हम सकुचित बनेंगे, न कि व्यापक। कहते है कि बुद्ध मासाशन किया करते थे। मासाशन उस जमाने मे आम रिवाज था। उन्होने उसका निषेध नही किया। अगर वह करते तो विचार-प्रचार न कर पाते, समाज से अलग पड़ जाते, असफल या हास्यप्रद बन बैठते। मै गाधीग्राम गया था। जी.रामचन्द्रन् आदि सब थे। मैने उनके सामने सीधा सवाल रखा—"खादी-ग्रामोद्योग के प्रयोग करने बैठ जाऊ ? क्या वह देश के लिए लाभकारी होगा ? कहिये, मै घूमना छोड देता हू।" रात मे जी रामचन्द्रन की चिट्ठी आई—"आपके कार्य के साथ अबतक हृदय था ही, पर अब बुद्धि भी है। मै

इस कार्य के लिए अपनेको समर्पण कर देता हू।"

स्वावलम्बन की स्थापना करने से मानसिक समाधान की प्राप्ति होगी, पर व्यापक सामाजिक कार्य नही हो पायेगा। युद्ध छिड गया, अनावृष्टि की आफत आई तो क्या दशा होगी, सोचिये तो सही। आज देश मे चार करोड के लिए अन्न की कमी है, और वैसी नौबत आई तो लाखो लोग मर मिटेंगे। जबतक स्वराज्य नही था तबतक अग्रेजो पर दोष लादा जा सकता था। पर वह सुविधा अब नही रही। अब वह दोष हमारे ही मत्थे मढा जायगा। यह सरकार नही टिक सकेगी। सस्था छोडकर प्रचार के लिए बाहर जाने की प्रेरणा मिलेगी। नया विचार, गाधी-विचार, लोगो को समझाने की, दुनिया मे सबकी ओर पहुचाने की प्रेरणा मिलेगी। पर वैसी नौबत आ पडने की मै राह नही देखता। हम है ही कितने? पहले ही हम सब इस कार्य मे लग जायगे तो विचार-प्रचार मुमकिन होगा और सरकार को अपना प्लान बदलने पर मजबूर करेंगे। काल की रफ्तार तेज है, स्वावलम्बन के प्रयोग मे अटके रहने के लिए समय नही।

ग्रामदान और तत्सबधी कार्य—डिफेन्स मेजर

अप्पा—असली कठिनाई यह है कि ग्रामदान का महत्त्व लोगो को कैसे समझाया जाय। उन्हे चुप बैठाया जा सकता है, पर उनको अनुकूल कैसे किया जाय? यह है असली समस्या।

विनोबा—येलवाल-परिषद् ने इस बारे मे पथप्रदर्शन किया है। यह कहना पर्याप्त नही होगा कि ग्रामदाम लाभकारी है। बिना ग्रामदान के ग्रामराज्य सभव नही और बिना ग्रामराज्य के खतरा है। केन्द्रीय सरकार, राज्य-सरकार, प्लॉनिंग कमीशन, कम्यूनिटी प्रॉजेक्ट इन चारो पर ही निर्भर मत रहिये, अपने पैरो पर खड़े रह जाइये—जवाहरलालजी यह कह चुके ही है। बिना ग्रामदान के आप गाव को सुखी नही बना सकते, मेरा चैलेज है। कृष्णदास ग्राम-सकल्प पर बल देता है। कहता है, ग्राम-सकल्प पहले होने चाहिए, पर मै पूछता हू—कितने हुए ग्राम-सकल्प? तामिलनाड मे ३०० ग्रामदान हुए,तो गाम्-सकल्प हुए केवल पद्रह-बीस। ग्राम-सकल्प की अपेक्षा ग्रामदान आसान है। ग्राम-सकल्प मे बडा झमेला रहता है। उसका

ग्रहण नही होता। खादी-ग्रामोद्योग का सकल्प आसान नही। ग्रामदान मे केवल भूमि का सवाल रहता है। निश्चय हुआ है कि ५० फीसदी जमीन तथा ८० फीसदी लोग इकट्ठे हुए तो ग्रामदान हो सकता है। हरेकृष्ण मेहताब अबतक विरोधी थे। केवल जाहिर ही नही लिखते थे, अपने निजी व्यक्तिगत पत्रो मे भी इसके खिलाफ आवाज उठाते थे। पर येलवाल से लौटने के बाद उन्होने आप ही एक पत्रक मे प्रकाशित किया कि ग्रामदानी गावो के लिए हर प्रकार की सहायता मिल जायगी। यह पत्रक गाव-गाव मे बाटा गया। येलवाल मे मैंने ग्रामदान तथा ग्रामसकल्प को डिफेन्स मेज़र बतलाया। एक विद्यार्थी की भाति पडितजी ने उसे लिख लिया। अत अन्य कार्यों मे न उलझते हुए भूदान-कार्य मे अपने-आपको समर्पित कर देना ही धर्म ठहरता है। ग्रामदान होने पर बाहरी साधन जुटाये जा सकते है, अन्यथा माग और उसकी पूर्ति एक-दूसरे से मेल नही खायगी।

प्रचार ही कीजिये

अप्पा—चालू कार्य कैसे सपन्न होगे ?

विनोबा—नानाभाई भट्ट मिलने आये थे। वह कहते थे कि ऐसा लग रहा है कि जो कल्पनाए मन मे सजोकर रखी वे शायद असफल होगी। सरकार ५वी कक्षा से अग्रेजी पढाने की सोच रही है। आप इसका क्या इलाज सुझाते है ? वह बोले, "गाधीवादियो को चाहिए कि और सब काम छोडकर बीस बरस तक यानी इस पीढी के बाद दूसरी पीढी के आने तक प्रचार-कार्य ही करते रहे। इससे सरकार का ध्यान इसकी ओर खिच जायगा और परिस्थिति से लाचार होकर सरकार और जनता हमे अपनी ओर बुलायेगी और तब हमारे काम सफल होगे। तबतक हमे प्रचार-ही-प्रचार करते रहना चाहिए। इसलिए मेरा कहना यह है कि हम त्रिविध कार्य करे—१. शहरो मे शाति-सेना की स्थापना, २ एकाध समूचा जिला ग्रामदान मे प्राप्त कर उसका सघन क्षेत्र बनाना, ३ सर्वत्र घर-घर मे साहित्य का प्रचार करना।

नव विचार और प्रचार

दूसरी बात यह है जब कोई क्रांतिकारी नया विचार उठता है, तब

घुमक्कडी आवश्यक होती है। बुद्ध, ईसा, शकर, रामानुज सब घूमे। उस घुमक्कडी मे कभी सुयश, कभी अपयश मिलता ही है। व्यापक प्रयोग होना चाहिए। केलप्पन ने एक जिला केरल मे इस प्रकार बनाने के लिए कमर कस ली है। वहा के ग्रामदानी गाव के काम मे खादी-ग्रामोद्योग आयोग की ओर से वैकुठभाई से मदद मागी है। वहा अदालत-कचहरी उठ जायगी। सब ओर शाति और सहयोग बढ जायगा, ग्रामराज्य स्थापित होगा। ऐसा अगर एक जिला बन गया तो समूचा केरल क्यो नही बनेगा? इस प्रकार का व्यापक कार्य हम नही करेंगे तो एक कोने मे पडे रहना होगा। जब मै पवनार मे रह रहा था तब दुनिया के लोगो को, जो बापू से मिलने आते थे, बापू मेरे पास भेज देते। कहते, "क्या विनोबा को आपने देखा है? जाइये और उनसे मिलिये।" आज अमरीका, इग्लैड, जर्मनी, जापान, रूस आदि देशो के लोग इधर आते है, पदयात्रा मे शामिल होते है। इससे उन्हे प्रेरणा मिल रही है।

ग्रामदान और कम्यूनिटी प्रॉजेक्ट

कटक शहर मे नवबाबू शाति-सेना इकट्ठी कर रहे है। कोरापुट जिला पूरा-का-पूरा ग्रामदानी हो जाय, यह उनकी कोशिश है। साहित्य-प्रचार हो रहा है।

मध्यप्रदेश मे बाबा राघवदास[1] घूम रहे है। वहा एक सौ पचास ग्रामदान हुए है। चार महीने रहने पर पूरा जिला ग्रामदानी हो सकेगा। वहा की राजमोहनी देवी—लोग उन्हे देवी ही मानते है—उन्हे वहा रहने के लिए आग्रह कर रही है। तब राघवदास ने मुझसे पूछा, "क्या करू?" मैने लिख दिया, "रह जाइये।"

कम्यूनिटी प्रॉजेक्ट देश भर फैलने जा रहा है। हर ग्राम का उसमे अतर्भाव होगा। वे आप लोगो का सहयोग चाहते है। अगर आप कही एकाध जगह ही हो तो वे आपसे सहयोग कैसे कर सकेगे? इसलिए उनके निश्चय का अर्थ यही है कि आपका फैलाव उनके समकक्ष चाहिए। इसलिए व्यापक रूप से प्रचार करने की तैयारी करनी होगी।

---

[1] अब दिवगत हो गये।

नये कार्यकर्ताओ का लाभ

जेल से छुटकारा मिलने के बाद मै गोपुरी रहा। वहा साम्ययोग का प्रयोग शुरू किया। लोग कहने लगे—अब आप ही उसे सम्हाले, हमसे नही सम्हाला जायगा। तब उनका अनुरोध मैने नही माना। कहा, "आप ही केवल मेरे है, इस प्रकार की भेद-भावना मेरी नही। वह ममत्व होगा, आसक्ति होगी।" अब वे लोग मेरे पास तीस-तीस सालो से है। पर उनके लिए संकीर्णता मुझे मजूर नही। इस आदोलन मे कितने नवीन पुरुषार्थी जवान हमे मिले है। देखा जाय तो उनमे से कई भरी जवानी के ससार मे है। निर्मला को एक भले गृहस्थ ने सलाह दी, "तुम यह क्या लेकर बैठी हो? तुम अपना विचार देखो। इसमे तुम्हारा हित नही होगा।" पर उसने उनका कहना नही माना। सबका त्यागकर वह इस आन्दोलन से एकरूप हो गई है। ऐसे कई युवा लोगो का देश को लाभ हुआ है।

पूर्ण स्वावलबन और पूर्ण साम्य ही क्राति

ग्राम-सेवा-मडल सौ फीसदी स्वावलवन और ५०-७५ फीसदी साम्ययोग की साधना कर रहा है तो खादीग्राम १०० फीसदी साम्ययोग और ५-१० फीसदी स्वावलबन का आचार करता है। ऐसे ये दो तरीके है। मडल अब भूक्राति के लिए बद्ध है। वग आदि पचास-साठ नये सदस्य बन गये है। पर अगर वे उसे ठीक नही चला पाये, स्वावलबन-युक्त पूर्ण साम्ययोग सिद्ध नही कर सके तो उन्हे असफल ही मानना पडेगा। उल्टे, वाहरी मदद पर वरसो निर्भर रहकर स्वावलबन सिद्ध न करना अपयश ही है। जब दोनो पूर्ण होगे, तभी उसे सिद्धि कहा जायगा, क्राति माना जायगा।

लक्ष्मीश्वर की राह पर,
१३-१२-५७

: ३३ :

अप्पा से चर्चा—२

हमारी शान्ति-सेना

पुराने और नये गुरु

आज भी कल की भांति अप्पासाहब से बातचीत हुई। आरंभ में बंगाली भजन गाया गया। लक्ष्मीश्वर ग्राम से बाहर जाने में बहुत समय लगा। बड़ा गांव है, पुरानी राजधानी है। कन्नड रामायण के रचयिता पंप का निवास-स्थान है। यह प्राचीन कवि जैनधर्मी था। पंप की प्रेरणा से कल का भाषण हुआ। सभा बाजार में बुलाई गई थी। वहां उस धूल तथा कोलाहल में विनोबा बोलना नहीं चाहते थे। पर सभा का स्थान कहां हो, कैसा हो, आदि बातों से प्रारंभ करके आज के विश्वविद्यालय और प्राध्यापक तथा पुराने मत और आचार्य तुलना के लिए ले लिये। आज की स्थिति का शोचनीय चित्र उपस्थित किया गया और क्या किया जाना चाहिए, इस ओर ध्यान खींचा गया। पूर्वकाल के ज्ञानी निरपेक्ष थे और स्वयं करुणा से प्रेरित होकर लोगों के पास पहुंच जाते थे। बुद्ध, महावीर, शंकर, रामानुज आदि ने देश का भ्रमण करके धर्म-प्रचार तथा ज्ञान-प्रचार किया। इस बात को समझाकर और एक नई बात पेश की, वह यह—देहात प्रकृति और परमेश्वर की सेवा करते हैं, शहरों को चाहिए कि वे इन सेवकों की सेवा करें। गांव से बाहर निकलकर आम रास्ते पर आते ही अप्पा से विनोबा बोले—

शांति-सेना के बिना तरणोपाय नहीं

शान्तिसेना तब याद आती है, जब कहीं दगा-फसाद हो जाता है, अन्यथा उसका स्मरण नहीं होता, भान नहीं होता। यह रहे, इसलिए कुछ खास कार्यक्रम जरूरी है।

शान्तिसेना का सुझाव कैसे हुआ? केरल में अत्यल्प बहुमत के बल पर सरकार बनी है। अतः पक्ष-पक्ष के बीच और उसके कारण समाज में तनाव

रहेगा ही। ऐसी तनातनी मे विना शातिसेना के तरणोपाय नही, यह बात ध्यान मे आई। उसके बाद रामनाथपुरम मे दगा हुआ। उससे तो शाति-सेना की जरूरत और स्पष्ट हो गई। ऐसी निष्पक्ष सेवापरायण शातिसेना के बिना समाज का, देश का, काम चलेगा ही नही।

दो साल पहले हरिभाऊजी उपाध्याय ने सुझाया था कि शातिसेना का काम देशभर मे मै करू, पर उसमे जो उनकी कल्पना थी वह एकदम हेय थी। पुलिस तथा लश्कर से काम लेने से पहले शातिसेना शाति-स्थापना की कोशिश करे और सफलता न मिले तो पुलिस या सेना को बुलाया जाय। यह थी उनकी कल्पना। पर न यह शाति होगी, न सेना।

समाज की सुव्यवस्थित धारणा के लिए भूमि, शिक्षा तथा शातिसेना जनता के अधीन रहनी चाहिए, जिससे समाज को मुक्ति और व्यक्ति को शाति, पुष्टि तथा तुष्टि का लाभ होगा। नई तालीम ही हमारी शातिसेना है। विहार के तुर्की ग्राम मे नई तालीम के सम्मेलन मे मैने यही सदेश सुनाया है।

काकासाहव के और मेरे विचार एक-दूसरे से समानता रखते है, पर समय मे भेद होता है। यह अनुभव अनेक वार हुआ है। जातिभेद का उच्छेद, शातिसेना और नई तालीम इनके सबध मे ऐसा हुआ है। जव-जव वह इस सबध मे बोले तव-तब यही हुआ है।

येलविगी के मार्ग पर,
१४-१२-५७

: ३४ :

अप्पा से चर्चा—३

विना साक्षात्कार के ज्ञान नही

पिछले दो दिन अप्पासाहव से ही चर्चा चली। आज वह जानेवाले थे, इसलिए आज भी उनके साथ ही वार्तालाप हुआ। प्रारभ हुआ एक

बंगाली गीत से, जो कृष्णकांत चक्रवर्ती द्वारा गाया गया। उसकी समाप्ति के बाद विनोबा बोलने लगे—

परमार्थ याने

कल आपने कहा कि सबके प्रपंच की चिंता परमार्थ है। पर वह पूर्ण-तया सही नहीं। परमार्थ में बहुत अधिक बातें अंतर्भूत हैं।

अण्णा—परमात्मा 'दशांगुलें उरला' (विश्व को व्याप्त करके दस अंगुलियां ऊपर रहता है), वैसे ही परमार्थ परिभाषा की परिधि में नहीं पकड़ा जाता।

कालिक तथा शाश्वत मूल्य

विनोबा—इधर सब लोग कह रहे हैं कि गीता का प्रतिपाद्य विषय कर्मयोग है। तिलक, गांधी, अरविंद सब कर्मयोग का प्रतिपादन करते हैं। यह महिमा उन व्यक्तियों की नहीं। यह काल की महिमा है। काल ही ऐसा है कि वह सबको कर्मयोग की प्रेरणा देता है। कई मूल्य कालिक रहते हैं तो कई शाश्वत। शाश्वत मूल्यों की प्रेरणा बिना साक्षात्कार के नहीं मिलती। श्रीअरविंद ने साक्षात्कार का अनुभव किया था। तिलक ने शायद इतना नहीं किया हो। जब तिलक माउंले-जेल में थे तब वह घंटा-डेढ़ घंटा समाधि में बैठा करते थे। उनके रसोइये ने ऐसा लिखा है। तिलक को केवल स्थूल कर्मवादी, असाक्षात्कारी नहीं कहा जा सकता। ईश्वर पर उनकी कितनी गहरी श्रद्धा थी। अदालत में उन्होंने अपने निवेदन में जो कहा है, There are higher powers (उच्चतर शक्तियां हैं) वह उनकी श्रद्धा के साक्षात्कार का द्योतक है। 'गीतारहस्य' का दूसरा प्रकरण सोचने लायक है। उसमें उनका विचार स्पष्ट हुआ है। चित्त की प्रसन्नता उसमें वर्णित है।

साक्षात्कार द्विविध

साक्षात्कार दो प्रकार का रहता है—एक ध्यानरूप और दूसरा प्रेम-रूप। बुद्ध का करुणा-साक्षात्कार ध्यानरूप था। अरविंद का भी ध्यानरूप था। अरविंद में ज्ञान, ध्यान, सब पाये जाते हैं। पर वैसा प्रेम नहीं दिखाई

देता। चैतन्य, ज्ञानदेव, नामदेव मे प्रेमरूप साक्षात्कार की झाकी मिलती है। ज्ञानदेव मे सब योग पाये जाते हैं—प्रेम, ज्ञान, ध्यान, कर्म। वह ध्यानयोगी थे। उसका सुविस्तृत वर्णन उन्होने 'ज्ञानेश्वरी' मे किया है। गोरखनाथ की भाति यह ध्यानयोगी थे। यह नही कहा जा सकता कि उनमे कर्मयोग नही था। 'ज्ञानेश्वरी' मे हर योग के निरूपण मे वह रंग गये हैं। कर्मयोग का निरूपण भी उसी तन्मयता के साथ उन्होने किया है। इसके अलावा 'ज्ञानेश्वरी' मे गुण-विकास पर भी बल दिया है।

'ज्ञानेश्वरी' धर्म-ग्रथ

'ज्ञानेश्वरी' धर्म-ग्रथ है। जिस ग्रथ मे जीवन के सब अगो का यथोचित परिपोष रहता हे, उसको मै धर्मगथ कहता हू। मनुस्मृति, कुरान, बाइबल सर्वागीण नही हैं। पर ज्ञानेश्वरी वैसी नही। वह सर्वागीण है। इस कारण वह हमारा धर्मग्रथ है। कुरान मे ध्यानयोग, तत्त्वज्ञान नही। उसकी पूर्ति सूफी पथ ने की है। धम्मपद मे नीति, विरक्ति, ध्यान है, पर न प्रेम है, न तत्त्वज्ञान। रामदास मे आपकी कही हुई सबके प्रपच की चिंता है। उन्होने तो कहा है—चिंता करितो विश्वाची—अर्थात् विश्व की चिता किया करता हू। पर वह थे भक्त। उनकी रामोपासना बडी कडी थी। ये सब प्रेमरूप साक्षात्कारी। पर कोई भी तत्त्व-सिद्धान्त बिना आचार के पूर्ण नही होता, बिना विनियोग के पूर्ण नही होता।

कार्ल मार्क्स का दर्शन असमाधानकारक

कार्ल मार्क्स ने अपना दर्शन वास्तविकता को लेकर नही बनाया। उसका वह प्राग्माटिज्म है, भविष्यद्वाद है। वह अधूरा है, क्योकि उसकी बुनियाद मे साक्षात्कार नही और बिना साक्षात्कार के जगत् का यथार्थ ज्ञान संभव नही। इसलिए उसका दर्शन उसके अनुयायियो को भी सतोष नही दे रहा है। एक बार केरल के शिक्षामत्री ने सभा मे कहा था—"कम्यूनिज्म का ईश्वर से विरोध नही है, पर आप लोगो की जो ईश्वरविषयक धारणा है, जो विधिविधान है, वह उसे मजूर नही।" किन्तु वेदान्त की कल्पना स्वीकार करने मे उसे कठिनाई नही महसूस होगी। शकराचार्य के तत्त्व-सिद्धान्तो का असर हुए बिना नही रहेगा। केरल के कम्यूनिस्ट इतना बोल सकते है, यह

के लिए सन्यास से पूर्व वानप्रस्थाश्रम की आवश्यकता मानी गई है।

गृहस्थ जब विषयवासना से तथा गृह से मुक्त हो जाता है तब वह वानप्रस्थाश्रम को स्वीकार कर सकता है। इस आश्रम मे घर और आसक्ति छोडनी पडती है। पत्नी को छोडने की जरूरत नही मानी गई है।

सन्यास द्विविध

ब्रह्मचर्याश्रम से तथैव वानप्रस्थाश्रम से सन्यास ग्रहण उक्त है। यह सन्यास दो प्रकार का होता है—१. ज्ञान-सन्यास २ विविदिषासन्यास। ज्ञान के कारण गृहीत सन्यास ज्ञानसन्यास है। पर ज्ञान के उद्भव के पहले ज्ञान-प्राप्ति के हेतु तपस्यारूप जो सन्यास स्वीकार किया जाता है उसे शास्त्रो मे विविदिषासन्यास कहते हैं। यह सन्यास भी दो प्रकार का है—वृत्ति-प्रधान और कर्म-प्रधान। मान लीजिये एक आदमी बबई मे रहता है। उसमे सन्यास-ग्रहण की प्रवृत्ति जगी, पर वह अपनी जगह तथा काम छोड नही सकता। तब वह क्या करे? एक तो उसको चाहिए कि वह सन्यास के प्रतिकूल वातावरणवाली बबई छोड दे या सन्यास-ग्रहण की इच्छा छोड दे, या उस परिस्थिति मे जो सभव हो उसे करे। इसे कहा जायगा कर्मप्रधान सन्यास। दूसरा आदमी ऐसा होगा कि वह कहेगा कि मुझे अमुक वृत्ति सजोनी है तो उसके प्रतिकूल वातावरण तथा कर्म का त्याग मुझे करना ही चाहिए। वह अपनी वृत्ति हमेशा स्थिर रखेगा। उसमे बाधा देनेवाले सब कुछ को काटकर दूर हटायेगा। इसीको मै वृत्तिप्रधान सन्यास मानता हू। इसे कोई एस्केपिज्म कहेगा। पर वह आवश्यक है। क्रिकेट के खेल मे मैदान का सवाल सबको परिचित है। अपने मैदान पर लडना आसान होता है। वृत्ति-प्रधान सन्यासी अपना मैदान नही छोडता। तो भी अपने क्षेत्र मे भी उसे कम लडना नही पडता। किसी भी मैदान पर बाजी मार ले जानेवाली टीम की अपेक्षा शायद इसे कम अक मिलेंगे। पर अपना निजी क्षेत्र चुनना बुद्धिमानी ही होगी। गाधीजी से पूछा गया—"बच्चे को साप काटने जा रहा है। इस खतरे मे आप साप को मारेंगे या नही?" गाधीजी ने जवाब दिया, "मै बच्चे का अभिभावक हू। इस नाते उसको बचा लेना मेरा धर्म है, जिसे मै छोड नही सकता। इसलिए अपरिहार्य बनने पर उस साप को मारना पडे तो मै मारूगा। पर मै समझूगा कि वह मुझसे पापकर्म हो गया

है। इसीको जैनधर्म मे अणुव्रत कहा जाता है। यह सेकडरी पोजिशन है। आदर्श मे समझौते के लिए गुजाइश कैसी ? सन्यास को मै वृत्ति-प्रधान ही मानता हू। हमे वृत्ति-प्रधान ही बनना चाहिए, न कि कर्म-प्रधान।

इसके उपरात अप्पा के लिखे सूदखोरी के लेख पर विनोबाजी ने चर्चा छेड दी। अत मे तीन दिन की चर्चा का समारोप किया।

चर्चा का समारोप

व्यक्तिगत स्वावलबन पर हद से ज्यादा बल देने से दोनो मे से एक भी बात ठीक-ठीक नही सधती। व्यक्ति की जीवन-यात्रा भी ढग से नही चलती और समाज-क्राति का उद्देश्य भी सफल नही होता। पहले आठ घटे कात-कर छ पैसे मै कमाता था। उसके बाद काचन-मुक्ति का प्रयोग किया, पर उसमे कहने लायक सफलता नही मिली। अत मे ऐसा न हो कि 'लाहे कारन मूल गवायो।'

सावनूर के मार्ग पर,
१५-१२-५७

: ३६ :

साक्षात्कार की कथा

साक्षात्कार का रूप द्विविध

मै—कल आपने साक्षात्कार की बात छेडी। पर इस साक्षात्कार का स्वरूप क्या है ?

विनोबा—कोई बात समझ लेना सामान्य बुद्धि का काम है। किसी प्रश्न के सम्बन्ध मे नि शक रहना, किसी भी शका या आक्षेप का सतोषप्रद उत्तर देने की क्षमता रखना, उसके बारे मे पूर्ण निश्चय रहना निश्चया-त्मिका या व्यवसायात्मिका बुद्धि है। यही बुद्धिगत साक्षात्कार है। दूसरा साक्षात्कार समाधिगत होता है, जहा तर्क-वितर्क के लिए स्थान नही। इन दोनो प्रकारो की बुनियाद मे व्यापक ज्ञान रहता है।

साबरमती की अनुभूति . एकाग्रता

१९१६ से २० के दरमियान साबरमती-आश्रम मे रहता था। रात को सुनसान मे, शब्द और दीप के शात हो जाने पर, अपने कमरे के अन्धेरे मे अपनी दरी पर बैठे-बैठे मैने ध्यान करना शुरू किया और शीघ्र ही एकाग्रता प्राप्त हो गई। उसमे मुझे बहुत समाधान मिलने लगा। पर आगे चलकर शका उठ गई कि यह शुद्ध समाधि न हो, कुछ नीद भी हो। समाधि का आभास तो नही है? इस विचार से मैने तीन महीने के इस प्रयोग को त्याग दिया और रात के बदले बड़े तडके ३ बजे उठकर ध्यान करने लगा। उसमे जल्द सफलता नही मिली पर, प्रयत्नो के फलस्वरूप धीरे-धीरे एकाग्रता का अनुभव मिलने लगा। यह अभ्यास मैने छ महीने तक किया। ध्यान औरसमाधि की यह मेरी पहली अनुभूति रही।

परधाम का अनुभव—शून्यता

नालवाडी मे १९३७ मे आठ-आठ घण्टे सूत कातने के प्रयोगो के कारण् मै दुबला हो गया था और उस हालत मे बुखार और खासी ने हैरान किया। इस कारण जमनालालजी चिन्तित हो उठे। "मेरी मा ४२ की उम्र मे चल बसी। तुकाराम का भी देहपतन उसी उम्र मे हुआ, और मेरा भी ४२वा साल चल रहा था। तो अब मै मानता हू कि मेरी जीवन-यात्रा खत्म होने को है।" कभी-कभी विनोद मे मै ऐसा भी बोल जाता। देह की तो फिक्र करता ही नही था। यह सब जानकीदेवी ने जमनालालजी से कहा और जमनालालजी ने बापू से कहा कि विनोबा की तन्दुरुस्ती चिंताजनक है, आप उन्हे बता दें। बापू ने मुझे बुलाया। बापू बोले, "तुम अपना शरीर ठीक नही रखते हो तो अब तुम मेरे पास मे आकर रहो। तुम्हे मै अपने कब्जे मे लेता हू। किसी अच्छे डॉक्टर से जाच करवा लेगे।" मैने कहा, "आपके उपचारो पर मेरा भरोसा नही। आपके पीछे यो तो कितने ही काम रहते है, उनमे बीमारो की तरफ ध्यान देना भी है। बीमार भी बहुत है, जिनमे से मै एक रहा। फिर मै किसी डॉक्टर के हाथ अपने शरीर को बेचना नही चाहता, वैसे तो शरीर और आत्मा को मै अलग नही मानता। अत मै ही अपनी तबीयत की बात देख लेता हू।" बापू बोले, "तुम कुछ नही

कर रहे हो, इसलिए तो मै वताता हू। लेकिन ठीक है, देखू तो सही तुम क्या करोगे।" वापू ने सुझाया कि स्थान-परिवर्तन के लिए मसूरी, नदीदुर्ग, महावलेश्वर या और किसी ठडी हवावाले स्थान मे जाकर रहना ठीक होगा। मै वोला, "स्थान-परिवर्तन का सुझाव मुझे मजूर है। स्थान मैने चुन लिया है—पवनार। वहा मै जाऊगा।" वापू बोले, "ठीक, गरीवो के लिए उचित स्थान ही तुमने निश्चित किया।" उसके वाद ७ मार्च १९३७ को मै पवनार चला गया। मोटर मे जाना पडा, क्योकि पैदल चलने की भी ताकत कहा थी? मेरी शुश्रूषा के लिए सत्यव्रतन् था। मोटर जव धाम नदी के पुल पर पहुची तव मै बोल उठा—'सन्यस्त मया, सन्यस्तं मया, संन्यस्तं मया'। सब कामो और सस्थाओ की चिंता एकदम छोड दी और बिल्कुल निश्चिन्त होकर वगले मे प्रवेश किया। केवल ज्ञानदेव और नामदेव के अभगो की पुस्तके साथ थी। घण्टो मन शून्य बनाकर पडा रहता। यह मेरा शून्यता का अनुभव था। इन दिनो जो खा लेता, सब शरीर को पुष्टि प्रदान करता। वीच मे एक महीना नई तालीम के लिए दिया। इस महीने मे वजन मे बिल्कुल वृद्धि नही हुई। अन्य महीनो मे हर महीने चार पौड के हिसाव से वजन वढता रहा और ९ महीनो मे ३६ पौड वजन बढ गया। इस अनुभव मे केवल शून्यमनस्कता ही रही। घडी को जिस प्रकार वन्द रखा जाय वैसे ही मन को वन्द रखा गया था।

चाडिल का अनुभव निर्विकल्प समाधि

इसके वाद १९५२ मे भूदान-यात्रा मे चाडिल मे मैलिग्नट मलेरिया से वीमार पडा। औपधि लेना नही, केवल रामनाम से ही वीमारी से मुक्त हो जाने का विचार था। बुखार पीछा नही छोडता था और कमजोरी इतनी वढ गई थी कि कोई मेरे जीने की उम्मीद नही रखता था। श्रीकृष्ण सिहजी आये थे। वह और लोगो से वोले, "मगनलाल गाधी इस तरफ आये और वीमार होकर चल वसे। अब सन्त विनोवा अगर दया नही करेगे तो बिहार के लिए वह वडा कलक होगा। हमारी प्रार्थना है कि आचार्य दया करे और दवा ले ले।" वडी व्याकुलता के साथ अश्रुसिक्त नेत्रो से वह कह रहे थे। इस हालत मे १७ दिसम्वर को मै करीव-करीव

चल बसने को ही था। पास के लोगो से मैने कहा, "मुझे बैठा दो।" मुझे याद है, राजम्मा थी। उसने और लोगो की मदद से मुझे बैठा दिया और मै समाधि मे मग्न हुआ। शास्त्र मे जिसे निर्विकल्प समाधि कहते है, उसी प्रकार की वह अनुभूति थी। निर्गुण स्वरूप की अनुभूति थी। उसका उल्लेख मैने किया था। उसे जानने के लिए जाजूजी ने अनेक बार लिखा-पढी की। पर मैने कोई जवाब नही दिया, जिससे जाजूजी ने समझ लिया कि यह अनुभव शब्दो मे अभिव्यक्त होने की क्षमता नही रखता और वह चुप हो गये।

उलाह का अनुभव सगुण स्पर्श

इसके अनतर मुगेर जिले मे उलाह ग्राम मे शिवमन्दिर के तलघर मे ठीक पिंडी के नीचे बैठा था, तब यह अनुभव हुआ कि शिवजी मुझपर आरूढ है। मै उनका नदी हू। अब 'अधिरूढ-समाधियोग' का नया अर्थ मालूम हुआ। अबतक मै उसका आशय 'योगारूढ' याने 'योग पर आरूढ' ही समझ रहा था। पर अब वह यह हुआ—योग ही जिसपर आरूढ हो गया है, जो योग का वाहन बन गया है। यह था सगुण स्पर्श। उसके बाद मै कार्यकर्ताओ को डाटा करता। उसमे मुझे कुछ बुरा नही लगता। कार्य-कर्ताओ को दु ख होता, पर मै उन्मत्त की भाति बोलता। मेरे पिछले भाषणो मे और बाद के भाषणो मे बारीकी से देखने पर कुछ फर्क जरूर महसूस होगा।

केरल का साक्षात् आलिगन का अनुभव

उसके बाद २२ अगस्त १९५७ को कर्नाटक प्रवेश के दो दिन पहले मसहरी मे सो रहा था कि बिच्छू या और किसीने काटा, सो बाहर आ गया। बिछौना उठाकर देखा गया तो गोजर था। लगातार वेदनाओ का अनुभव हो रहा था। वेदनाए इतनी तीव्र थी कि एक जगह बैठा नही जाता था। इधर-से-उधर, उधर-से-इधर, बेचैनी से घूम रहा था। राजम्मा के पिताजी ने मन्त्र का भी प्रयोग किया, पर कुछ भी असर न हुआ। वेदनाए असह्य हो चली थी। पाच घण्टे तक यही सिलसिला जारी रहा। आखिर बिछौने पर लेट गया। आखो से आसुओ की झडी-सी लग रही थी। वल्लभ

को लगा, मैं दर्द के मारे आसू बहा रहा हू। वह मेरी पीठ पर हाथ फेरने लगा। मैंने उसे बताया मुझे, कोई दु ख नही। मै सो जाता हू। तुम भी सो जाओ।

मै मन मे गुनगुना रहा था—

नान्या स्पृहा रघुपते हृदये मदीये
सत्य वदामि च भवान् अखिलान्तरात्मा।
भक्ति प्रयच्छ रघु-पुगव निर्भरां मे
कामादिदोषरहित कुरु मानस च॥

पर दु ख दूर हो जाने की इच्छा तो थी ही। कहता था 'सत्यं वदामि'। पर वह था 'झूठं वदामि' ही। वह अहकार ही था। जोर-से मन मे बोल उठा—"कहातक तू सतायेगा ?" और मेरी वेदनाए मिट गईं। मुझे आलिगन का अनुभव हुआ। आखो से आसू झरने लगे। मैं लेट गया और दो मिनट के भीतर गहरी नीद मे डूब गया। वेदनाए तो मिट गई, पर दाहिने हाथ की तर्जनी बाद मे डेढ महीना दुखती रही, और अब भी बाये हाथ की तर्जनी जैसी नही हुई। किंचित् जडता बाकी है। यह अनुभव सगुण (साकार ?)-सा था। महादेवी लगातार पीछे पडी कि मैं इस अनुभव का वर्णन करू। पर पद्रह-बीस दिन तक उसे मैं टालता ही रहा। कहा—दामोदर को आने दो, सबको बताऊगा। आखिर एक दिन बता दिया। दामोदर नही आया था।

सतो के साक्षात्कार

चैतन्य का साक्षात्कार प्रेममय था। वल्लभाचार्य का भी प्रेममय था। पर उसमें ज्ञान भी था। वह उतना आविष्ट नही था। बुद्ध का साक्षात्कार ध्यानमय था और अरविन्द का भी। यद्यपि वे उसे पूर्ण कहते तो भी मैं उसे ध्यानमय ही समझता हू। गाधीजी का साक्षात्कार भावनापूर्ण था। पर ज्ञानदेव का पूर्ण था।

बंकापुर की राह पर,
१६-१२-५७

: ३७ :

अहंकार का नाश ही मुक्ति

बिंदु की शुद्धि और वृद्धि सिधु मे विलीन होने मे

मै—कल के प्रार्थना-प्रवचन मे आपने अकेले तप साधना करनेवालो को स्वार्थी वताया। वह कहातक उचित है ? सामुदायिक साधना की जाय कहना ठीक है।

विनोबा—जहातक ठीक होगा वहातक। कोई बीमार हो और उसे कुछ समय तक पचगनी मे या कही अन्यत्र अलग उपचार के लिए रखा जाय तो समझा जा सकता है। उसी प्रकार मन शान्ति के लिए कोई कुछ समय तक एकान्त मे साधना करने जाय तो समझा जा सकता है। लेकिन ससारी आदमी जैसे मेरा घर, मेरी दारा कहा करते है, वैसे मेरा तप, मेरी मुक्ति कहते रहना भी उसी प्रकार का काम होगा। दोनो अहकार ही है। रस्सी को साप समझकर उससे भागना या उसे पीटना दोनो अज्ञानमूलक ही है। समूचे समाज की हितसाधना मे अपना हित है। एकान्त मे उसीके प्रतिनिधि-रूप वनकर चितन करना ठीक है, जैसा कि गायत्री मन्त्र मे है। पर यह मानना कि मै कोई अलग हू, ज्ञानी हू, अहकार ही है। उसे मिटाना ही मुक्ति है। पर उस अहकार को धारण करके तपस्या शुरू करना वद-तोव्याघात का अच्छा उदाहरण होगा। मुक्त होकर जाना कहा ? मुक्ति की धारणा ही मूल मे भ्रात है। मेरा गुण, मेरा दोष, इनसे मुक्त होना चाहिए। उनसे अलग हुए विना मुक्ति नही। बिंदु की शुद्धि और वृद्धि सिंधु मे विलीन हो जाने मे है। जो मेरा तप, मेरी मुक्ति कहता है, उसे पूजीवादी ही कहना होगा। इसलिए उसे स्वार्थी कहना पडता है।

समूह-साधना सुलभ

समूह-साधना मे ब्रह्मचर्य-पालन भी आसान होता है। वात्सल्य-भाव की तृप्ति के लिए निजी सतान की आवश्यकता नही। औरो के बच्चे होते ही है। गृहस्थाश्रमी के लिए घृणा का भाव न रहे। आखिर मुक्ति के मानी अहमुक्ति ही है। दूसरी मुक्ति कहा की ? साम्यसूत्रो मे आखिरी सूत्र है—

अहमुक्ति शब्दात्, अहमुक्ति शब्दात्। (वल्लभ वोला—शब्दात् से क्या मतलव ? मै बोला—मेष-शब्दात्, दादोशब्दात्।)

सिद्धि का मूल्य

योग-साधना से सिद्धि प्राप्त होती है, पर वह मुक्ति नही। वह तो मुक्ति के मार्ग मे रोडा है। उसका मूल्य ही कितना ? रामकृष्ण परमहस ने एक योगी का किस्सा सुनाया है। उसने वीस बरस की साधना के वाद सिद्धि प्राप्त की और पानी पर से पैदल चलता आया और वोला—देखो, मै कैसे पानी पर चलकर आया ! उसपर रामकृष्ण बोले—यह क्या योग है ? यह क्या मुक्ति ? दो पैसे देकर नाव मे वैठकर वह नदी पार कर सकता था। उसके लिए वीस वरस की साधना की क्या जरूरत ? वीस वरस की साधना की कीमत दो पैसे !

मेरा वाल्यकाल का योग-साधन

जव मै छोटा था, मा गर्मी की छुट्टियो मे कोकण जाती थी। मै और पिताजी वडौदा मे रहते। पिताजी दफ्तर जाते और मै अकेला घर रहता। उस वक्त मै नल की छोटी धारा सिर पर छोड लेता। ब्रह्मरध्र पर सतत धारा के पडने से कुडलिनी जागृत होगी, यह धारणा थी मेरी। इसी समय अरविंद के भाई वारीद्र घोष के वारे मे अखवार मे प्रकाशित हुआ था कि वह जेल मे योग-साधना करता है। कहा जाता था कि उसका आसन जमीन से फुट-आधा फुट ऊपर उठा करता। मैने भी कोशिश की, पर आसन क्यो ऊपर उठने लगा ! जाघो को यथासभव ऊपर उठाता, पर जघन वैसे ही जमीन पर टिका रहता। तो भी मैने समझ लिया कि उसे छोडकर भी ५० फीसदी सफलता मिली। (वारीद्र का यह योगसाधन था सिर्फ अग्रेजो को भगाने के हेतु।) मै भी योगी बनने की ऐठ मे इठलाता फिरता। इतना ही मेरा योग रहा।

मेरा ज्ञानेश्वरी पठन

वैसा ही मेरा ज्ञानेश्वरी का पठन। १६ वे बरस मे, १९११ मे, मैने पहली वार ज्ञानेश्वरी पढ डाली। तव वह कुछ भी समझ मे नही आती थी, पर पढ चुकना ही भूषणास्पद था। उस समय मैने एकनाथी भागवत भी

पढ लिया था। वह कुछ-कुछ समझ मे आता था। आगे चलकर सन् १६२६ मे ३१ साल की उम्र मे ज्ञानेश्वरी चार बार पढ डाली। उस वक्त मेरी ग्रहण-शक्ति काफी बढ गई थी।

नरेगल की राहपर,

१७-१२-५७

: ३८ :

बुरे विचारों का निर्मूलन

विकारो का सप्रेशन तथा ऑप्रेशन

इसके अनतर गोविंदभाई ने पूछा—

१ मन मे अच्छे विचार अचानक आ टपकते है, बुरे विचार भी। सो क्यो और कैसे ?

विनोवा—पूर्व-सस्कारो के कारण आते है। पूर्वजन्म के कारण भी कई आते है। चालू जन्म के भी रहते है। मन मे भी वासनाएं भरी रहती है। परिस्थिति का भी असर होता है।

एक सज्जन वीमारी मे वडवडाने लगे। वह इतनी अश्लील भाषा वोलते थे कि सुननेवाले अचभे मे आते। वह अतीव सभ्य और भद्र पुरुष थे।

उसकी हमे मदद करनी होगी। उसके साथ हमदर्दी रखनी चाहिए। उनसे घृणा कतई न करे। उन्होने प्रयत्नो से अपने वासना-विकारो को सर नही उठाने दिया। यह उसका पराक्रम है।

पर आज के मनोवैज्ञानिक कहते है—

"विकारो का सप्रेशन (दवाना) करना नही चाहिए। विकारो को दवाना, रोक रखना ठीक नही।" पर यह विचार गलत है। उनको 'सप्रेस' नही करना है तो क्या वे हमे ऑप्रेस कर डालें ? उनके वस मे हो जाय ? उनका शिकार वने ? विकारो को स्वैर होने देना पराक्रम-शून्य वनना है।

सौदर्य-मात्र भगवत्सौदर्य लगे

२ सुदर फूल देखते ही उसे नाक मे ठूसना, वालो मे खोस देना 'क्रूड', वहशी है। उससे पवित्रता तथा प्रसन्नता निर्माण होनी चाहिए।

सुन्दर स्त्री को देखते ही भोग की वासना क्यो पैदा हो? पवित्रता का प्रादुर्भाव क्यो न हो? जव कल्याण के सूवेदार की वहू शिवाजी के सामने उन्हे अर्पण करने लाई गई तव वह क्या वोले? "आपके समान मेरी मा सुदर होती तो मै भी सुदर वन जाता।" सौदर्य को देखकर ऐसी धारणा हो कि वह भगवत्सौदर्य है, पवित्र है।

तामिलनाड मे चद्रशेखर की लडकी तथा श्रीरगपट्टण मे एक नटी ने मेरे सामने नृत्य किया। उसे देखकर मुझे लगा कि नटराज श्रीकृष्ण ही नाच रहा है मेरे सामने। गीतगोविंद का वह अभिनय था। कृष्ण और राधा का वह अभिनय था। पर वाद मे मालूम हुआ कि उस लडकी के पीछे लडके पडे थे।

स्थूल उत्तान शृगार के अश्लील वताकर खिल्ली उडाते है, पर उससे भी बढकर अश्लीलता रहती है, विकृतता रहती है ध्वनित या सूचित शृगार मे।

वासनाए अतर मे रहती है, सृष्टि मे कामवासना खुलेआम दिखाई देती है, साहित्य उसे उभाड देता है, इससे मन मलिन हो जाता है। पर निग्रह से विकारो का शमन करना चाहिए।

सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ता । परो हि योगो मनसः समाधि ।

नरेगल की राह पर,
१६-१२-५७.

: ३९ :

अंतिम अवस्था अनेकविध संभवनीय

मैं—इस्लाम मे मुक्ति की क्या कल्पना है ?

विनोबा—इस्लाम मे रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत जैसी कल्पना है। (आदम खुदा नही, खुदा के नूर से आदम जुदा नही)।

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वभ्।
सामुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंग ॥

इसके समान ही उनकी मुक्ति की कल्पना है।

मैं—मुक्ति अगर अह-मुक्ति है तो फिर द्वैत की गुजाइश कहा रही ? सलोकता, समीपता, सरूपता तथा सायुज्य चार मुक्तिया वर्णित है, पर सायुज्य ही सच्ची मुक्ति है। बाकी सब नाममात्र की मुक्तिया है।

विनोबा—मुक्ति से इद्रिय सुखविनि.स्पृहता ही समझनी चाहिए। अतिम अवस्था अनेकविध हो सकेगी। इसके अलावा एकविध अवस्था का अनुभव व्यक्ति-व्यक्ति के लिए अनेकविध हो सकेगा। पानी एक है, वह हिम प्रदेश मे गर्म मालूम होगा तो उष्ण प्रदेश मे शीत। ईश्वर-ज्ञान अनन्त है। उसे अपने अनुभव से सीमित कैसे किया जा सकता है ?

हावेरी के मार्ग पर,
१९-१२-५७

: ४० :

कणिका—४

डा अनतरामन् से चर्चा हुई। चर्चा करने से पहले विनोबा बोले—

सरकारी कर्मचारी क्या कर सकेंगे

धारवाड के असिस्टेंट कमिश्नर मेरे पास आकर बोले—"हम आपकी

क्या सेवा कर सकते है, बताइये।" मैने बताया--"सरकार की ओर से जो करना है उसे तो आप करेगे ही। पर व्यक्तिश आप क्या कर सकते है, बताता हू। १ आप सपत्तिदान कर सकते है। २ साहित्य-प्रचार किया जा सकता है। ३ ग्रामदानी गावो मे जाकर उनको बधाई देते हुए उन्हे उत्साहित कर सकते है। यह आप कर सकेंगे और मेरी अपेक्षा है कि आप इतना करे।

शहरो का कार्य

अनतरामन्—सर्वोदय-विचार के लिए हम शहरो मे क्या करे ?

विनोबा—अच्छा सवाल किया आपने। शहरो की उपेक्षा करने से काम नही चलेगा। शहरो की स्थिति विशिष्ट होती है। वहा शिक्षित समाज रहता है। देहात मे काम करनेवाले सेवक वहा काम नही आयंगे। शहर मे काम होना ही चाहिए। मैने भारत भर के छ शहर चुन लिये है--बेगलूर, बबई, बडौदा, कटक, काशी और गया। बेगलूर मे दक्षिण तथा उत्तर भारत का समन्वय है, दुनिया भर के लोग भी वहा आते है, रहते है। इस-लिए वह अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र है। आबोहवा की दृष्टि से भी वह अच्छा है।

बबई बडे शहर का नमूना है। वहा भारत भर के सब राज्यो तथा भाषाओ के और विदेशी भी लोग है। वह कॉस्मॉपॉलिटन है। बडौदा मध्यम शहर का नमूना है, वह एक सास्कृतिक केन्द्र है। कटक कोरापुट जिले के ग्रामदानी सघन क्षेत्र का निकटर्ती स्थान है। वहा नवबाबू कार्य कर रहे है। काशी विद्या का केन्द्र है, वहा हिन्दू यूनिवर्सिटी है। भारत भर के लोग वहा आते है। गया बोद्धो का बडा तीर्थ-क्षेत्र है। इस प्रकार मैने छ शहर चुन लिये है। यहा सर्वोदय का, मुख्यत शाति-सेना की स्थापना का काम होना चाहिए।

अनतरामन्—पर हम पूर्ण समय नही दे पायगे तो हम शाति-सैनिक कैसे बन सकेंगे ? या हमे अपना चालू काम छोड देना पडेगा ?

विनोबा—शुरू से ही अपना काम छोडने की आपको जरूरत नही। आप हर रोज दो घटे दे सकते है। आप लोगो की सहायक शाति-सेना हो सकती है, बेंगलूर मे दो हजार शाति-सैनिक और पाच हजार सहायक

सैनिक चाहिए। हिंसा-विरोधी और वैधानिकता से अलग, यह हमारी योजना रहेगी।

शहर मे १ शातिसेना, २. सहायक शातिसेना, ३ साहित्य-प्रचार, ४ संपत्तिदान और ५ सर्वोदय-विचार के अध्ययन तथा परीक्षा का केन्द्र, ये काम होने चाहिए।

खादी ही क्यों ?

प्रश्न—एकादश-व्रतो मे स्वदेशी एक व्रत है। अब मिल का कपडा भी स्वदेशी है और खादी भी। फिर खादी का ही आग्रह क्यो ?

उत्तर—स्वदेशी है, इसलिए विष खाना बुद्धिमानी नही है। १०० फी-सदी स्वदेशी विष खाकर सौ फीसदी मौत को क्या गले लगाना है ?

मेरी चले तो मै सब मिले बद करके खादी सार्वत्रिक कर दू। आज केवल एम्प्लायमेट का सवाल नही, अडर-एम्प्लायमेट का सवाल उससे भी बडा है। उसे हल करने के लिए खादी जैसा समर्थ उद्योग दूसरा नही। दूसरा कोई दिखा दे तो मै खादी छोडने को तैयार हू। मेरा चैलेंज है और वह आज भी कायम है। गत चालीस वर्षों मे ऐसा दूसरा उद्योग दिखाने मे कोई समर्थ नही हुआ।

स्त्रियो के सब उद्योग-धधे अब पुरुषो ने छीन लिये है। पीसना, कूटना, धाना, कताई, वस्त्रोद्योग सब स्त्रियो के काम थे। उन्हे अब पुरुष चलाते है। स्त्रियो के लिए अनुकूल ये काम उनके जिम्मे छोडकर पुरुषों को दूसरे कठिन काम करने चाहिए।

आज चपरासियो को खादी की वर्दी दी जाती है, पर वरिष्ठ नौकरों को नही। जब मै दिल्ली मे था तब इन सब सनदी नौकरो की, खादी की अनिवार्यता मान्य करने की तैयारी थी। पर उन्हे वैसी सूचना नही मिली। फल यह हुआ कि खादीधारी मिल के सूट-बूटवाले को सलाम कर रहा है, यानी यह हुआ कि खादी मिल की महरी बन गई।

आखिर खादी ही चलेगी, मिल नही। आबादी बढ रही है, हर साल आधा फीसदी। इस बढती जनसंख्या को कौन-सा काम देंगे ? दुनिया को खादी अपनानी पड़ेगी।

परिवार-नियोजन

प्रश्न—फैमिली प्लॉनिग के वारे मे आपकी राय क्या है ? सरकार उसपर लक्षावधि रुपये खर्च कर रही है।

उत्तर—उससे अनैतिकता, स्वैराचार ही वढ जायगा। प्रजा निर्वीर्य वनेगी। आज गार्हस्थ्य १८ से ५८ की उम्र तक प्राय चलता है। ४० साल की यह अवधि २० साल की की जाय, याने २५ से ४५ तक रहे।

इग्लैंड मे हर वर्ग मील मे २७५ लोग रहते है। हिन्दुस्तान मे उससे अधिक नही है। इसलिए प्लैनिग करना हो, तो वीर्यसग्रह की ही दृष्टि से, वीर्य-हानि की दृष्टि से नही।

१०० वर्ष की मानवी आयु मानी जाय तो गृहस्थाश्रम के हिस्से मे २५ वर्ष आते है, पर आज १०० की आयु कल्पना मे ही रही है। ८० वर्ष ले सकते है, वह तो पहुच मे है। उसका वटवारा पच्चीस, वीस, पच्चीस और दस यो किया जाय। पच्चीस साल ब्रह्मचर्य, वीस साल गार्हस्थ्य, पच्चीस साल वानप्रस्थता, दस साल सन्यास। पैंतालीसवे साल मे वान-प्रस्थाश्रम स्वीकार करने से समाज-सेवा के लिए वडी तादाद मे सेवक मिलेंगे।

प्रश्न—ब्रह्मचर्य की प्रेरणा से समाज-सेवा जिस प्रकार हो सकती है, उसी प्रकार प्रेम-प्रेरणा से क्यो नही हो सकेगी ? आप प्रेम-प्रेरणा को हीन क्यो मानते है ?

उत्तर—हिन्दू धर्म मे गृहस्थाश्रम की जो प्रतिष्ठा है, वह और किसी धर्म मे नही, न ज्यू धर्म मे है, न कैथॉलिक पथ मे।

हिन्दूधर्म ने सतानोत्पत्ति के हेतु स्त्री-पुरुष समागम को धर्म माना है। तदितर सम्वन्ध स्वैराचार है। प्रेम के नाम पर विपयासक्ति को मान्यता नही दी जा सकेगी। प्रजोत्पादन को छोड पति-पत्नी तथा भाई-वहन के प्रेम मे कितना अतर है ? और प्रजोत्पादन के लिए जिन्दगी भर मे तीन वार या चार वार ? किसान को अगर वोआई दूसरी वार करनी पडे तो वडा वुरा लगता है। मानवीय वीर्य की कीमत क्या अनाज के दाने के वरावर भी नही ?

प्रश्न—शरीर-सम्वन्ध, शरीर-सम्पर्क क्या मनुष्य के शारीरिक मान-

सिक विकास के लिए, समाधान के लिए आवश्यक नही ?

उत्तर—शारीरिक सपर्क कोई आवश्यकता नही। प्रेम मानसिक भावना है। दूध पिलाना, रक्षा करना, आशीर्वाद देना, बोलना आदि बातो की जरूरत होगी। पर प्रेम दिखाने के लिए चुबन की क्या आवश्यकता ? बालक उसे पसद भी नही करता। रोग फैलाने का वह अच्छा साधन है। वास्तव मे तो गाल केवल पोछ या धो लेने से काम नही चलेगा। उसे डिस-इन्फेक्ट करना होगा।

प्रश्न—गीता मे कहा है—'**धर्मविरुद्धो भूतेषु कामोस्मि भरतर्षभ**'।

उत्तर—पर उसका आशय यही है कि प्रजोत्पादन के ही लिए स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध धर्म है। शकराचार्य तो उसे भी नही मानते। धर्म के अविरुद्ध काम *याने 'अशनपानादिकम्' उन्होने बताया है।*

प्रश्न—तो फिर आदमी को स्थितप्रज्ञ ही बनना पडेगा।

उत्तर—नही तो, अर्जुन '**किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत् किम्**' इस प्रकार क्यो पूछता ? स्थितप्रज्ञ का बर्ताव सहज रहता है, हमे प्रयत्न से उसे अपनाना चाहिए। उसका अनुसरण हमे प्रयत्नपूर्वक करना पडेगा।

सतानहेतुविरहित स्त्री-पुरुष-सगम व्यभिचार है। इसलिए बचपन से ही सबको सयम की शिक्षा देनी चाहिए। आज तो उल्टी बात हो रही है। सिनेमा क्या है ? भूभारावतरण के लिए परमेश्वर का अवतार ही है मानो। सयम के अभाव मे लोग मर जायगे। और क्या होगा ? दिल्ली की महिलाओ की माग थी कि सिनेमा पर रोक लगाई जाय। इलाहाबाद म्युनिसिपालिटी ने सरकार की ओर प्रस्ताव भेजा था कि सिनेमा का दूसरा शो बद किया जाय। पर सरकार ने उसे मजूरी नही दी। समझ मे नही आता कि उसने अपने मंत्री से इस्तीफा क्यो नही दिया ? जनमत का यह अनादर ? सत्याग्रह की जरूरत थी।

हावेरी के मार्ग पर,
१९-१२-५७

: ४१ :

बाबाजी के पिताजी

बगाली सगीत सपन्न हुआ। यद्यपि हम उसकी सराहना करते हैं तो भी गानेवाले लोग बिल्कुल मामूली हैं। एक भी सुरीला कठ नही। सब मिलकर ठीक गाते हैं सो भी बात नही। फिर भी न कुछ से कुछ बेहतर है। यह सोचकर उसे ठीक माना जाता है। सगीत के बाद मौन रहा और थोडी देर बाद विनोबा बोले—फिजिक्स और केमिस्ट्री पिताजी के विषय रहे। रगाई के प्रयोग करना वह चाहते थे। उस विषय मे वह अनुसधान कर रहे थे। इस कारण उन्होने अपनी पहली हैडक्लर्क की नौकरी से इस्तीफा दे डाला, क्योकि उसमे तबादला होता था। अनुसधान का यह काम एक स्थान पर स्थिर रहकर करना चाहिए था। इसलिए एक नौकरी छोडकर बडौदा मे खानगी खाते मे नौकरी स्वीकार की। प्रयोगार्थ वे कपडे के छोटे-छोटे टुकडे रगा करते थे। कभी-कभी मा को दिखाते थे। मा कहती—आपने सैकडो टुकडे रग डाले, पर मेरी एक साडी नही रग सके। वह कहते—तुम्हारी एक साडी जग की रगाई मे रग जायगी। यह प्रयोग है। सिद्ध हो गया तो दुनिया का काम बन जायगा। जब कहा जाता कि वह ये प्रयोग सस्था मे करे तो कहते—प्रयोग सफल हुआ तो ठीक होगा, नही तो सस्था को लगेगा कि पैसा बरबाद हुआ। मैं यह नही चाहता, इसलिए अपनी जेब से खर्च करके प्रयोग कर रहा हू। सफल हो जाय तो दुनिया का लाभ होगा, न हो जाय तो मेरी ही हानि होगी। मेरे पास जो थोडा-सा पैसा है, उसमे से अपने प्रयोगो के लिए खर्च कर रहा हू।

मै—पिताजी विज्ञान के उपासक थे। उनका सारा घर ही प्रयोग-शाला थी। समूचे जीवन की ओर वह वैज्ञानिक दृष्टि से देखा करते थे। मुझे वह बुद्ध-विचार-वाले लगते हैं।

विनोबा—पिताजी कथा-कीर्तन मे जाते थे और हमे भी जाने को बताते।

चित्रकला, सिलाई, छपाई, रगाई, बुनाई तथा आहार आदि के बारे

मे विविध प्रयोग पिताजी ने किये। उन्हे वेचने के लिए हमे वाजार भी भेजा। वह निरतर काम मे मशगूल रहते। सन् १९१५ मे मैं घर छोड चला गया और तीन वर्ष वाद याने १९१६ मे माँ इन्फ्लुएजा से चल वसी। उसके वाद वालकोवा और शिवाजी भी आश्रम मे चले आये। तव वह अकेले रहे। उसके वाद उन्होंने सगीत की साधना शुरू की।

मैं—पर उसमे भी उनकी दृष्टि रजन की अपेक्षा शास्त्र-सेवा की अधिक रही, ऐसा दिखाई पडता है।

विनोवा—हा, उन्होने किसी मुसलमान सज्जन से संगीत की चीजे और वोल, जो शायद उसीके साथ समाप्त हो जाते, लिख लिये और सशोधन के वाद उन्हे पुस्तक रूप मे प्रकाशित किया।

मा की आखिरी प्रसूति मे उसे तकलीफ हुई, इसलिए उसने पिताजी को सुझाया कि वह ब्रह्मचर्य का पालन करे, जो उन्होने मान लिया। यह रही १९१३ की वात। उस वक्त उनकी उम्र ३९ साल की थी। तवसे १९४७ यानी उनकी मृत्यु तक वह वानप्रस्थ-वृत्ति से रहे। पिताजी के लिए मा के दिल मे वडी आदर-भावना थी। हर भारतीय स्त्री अपने पति के वारे मे प्रेमादर रखती ही है। पर पिताजी की उदारता के कारण मा उन्हे विशेष आदर की दृष्टि से देखती थी।

मैं—अपने लिए दूसरे को जरा-सी भी असुविधा न हो और दूसरे की यथाशक्ति याने शक्ति के अत तक सेवा-सुविधा अपने हाथ होती रहे, यह था पिताजी का स्वभाव। मन-वचन-कर्म से परोपकारशीलता उनका विशेष गुण था। मैंने एक वार उन्हे लिखा था कि आश्रम-सगीत के लिए मराठी पद अपने जाने हुए भेज दे। उन्होने वाजार मे जाकर खोज-खोजकर मराठी पदो की पुस्तिकाए भेज दी थी। जब मगनवाड़ी आये थे तब अपनी जरूरत का सारा सामान अपने साथ ले आये थे।

विनोवा—जमनालालजी एक वार सावरमती आये थे। लौटते वक्त उन्होने सोचा कि पिताजी से मिलकर चले जाय। वैसा उन्होने लिख भी दिया। जमनालालजी का प्रवन्ध अच्छा हो, कोई असुविधा न हो, इसलिए एक मारवाडी के यहा जाकर समझ लिया कि उसका भोजन कैसा रहता है, कौन-कौन-सी चीजे आवश्यक है, कैसे परोसा जाता है, आदि। वाजार

जाकर चावल, गेहू, दाल ले आये। ये चीजे उनके खाने मे नही आती थी। घर लाकर उन चीजो को साफ किया। गेहू खुद ही पीस लिये, फुल्के बनाये, घी, पापड आदि सब करीने से रख दिये। तागा लेकर जमनालालजी को स्टेशन से ले आये। उनका भोजन हुआ और विश्राम के बाद वह शाम की गाडी से वर्धा लौट आये। आने के बाद मुझसे मिले, तब उन्होने कहा—ऐसा प्रेममय आदमी मैंने कभी नही देखा। यह कहते हुए उनकी आखे डबडबा आईं। वह बोले—जानकीदेवी इससे अधिक क्या कर सकती। मुझे लगा कि मैं घर पर ही हू। मैंने पूछा, "भोजन किसने पकाया ?" तो वह बोले, "सबकुछ मैंने ही किया है। तब तो मै बिल्कुल पिघल गया।"

पिताजी ने हमारे लिए उद्योग और मितव्ययिता से बीस हजार रुपये रख छोडे थे। हमने उनसे एक कौडी की भी अपेक्षा नही रखी थी, तो भी न्याय-बुद्धि से वह रकम उन्होने हमारे लिए रख छोडी और हमे लिखा कि उसे हम स्वीकार करे। पर हमने इन्कार किया, जिसका उन्हे बडा दु ख हुआ। आखिर उनकी मृत्यु के बाद बैंक मे से वह रकम निकाल लेनी पडी और अब वह 'ग्रामसेवा मडल' के पास पडी है। उनकी रगाई-विषयक सैंकडो रुपयो की किताबे पवनार मे पडी हैं।

मा पिताजी को बडे आदर की दृष्टि से देखती थी, तो भी उसका मुझपर ज्यादा विश्वास था। उसे एक लाखचावल गिनते हुए देखकर पिताजी बोले—"यह तुम क्या कर रही हो ? एक तोला चावल ले लो। उसमे कितने चावल रहते हैं देखो और उस हिसाब से एक लाख चावल गिन लो। ऊपर और आधा तोला डाल दो, ताकि सख्या अधूरी न रहे। थोडे दाने ज्यादा हो गये तो हर्ज क्या है ?" इसपर वह कुछ नही बोली। वह कुछ जवाब नही दे सकी। मेरे घर आने पर वह बोली, "विन्या, कहो न इसमे क्या राज है।" मैंने कहा, "वह तो गणित का सवाल नही, वह है भक्ति। सतो और ईश्वर के स्मरण के लिए वह काम किया जाता है।" रात को उसने पिताजी को बता दिया। मा हमारी भक्तिमती थी। बडी वैराग्यशालिनी भी थी।

ब्याउगी के मार्ग पर,

२०-१२-५७

: ४२ :

कणिका—५

मन, बुद्धि और चित्त

मैने पूछा—वेदान्त मे मनोनाश शब्द पाया जाता है, पर योगशास्त्र मे चित्तवृत्ति-निरोध। दोनो मे कुछ दृष्टिभेद जरूर है, वह कौन-सा ?"

विनोबा—वेदान्त का मनोनाश वृत्तिनाश ही है। मन अन्त करण की एक वृत्ति मानी गई है।

मै—चित्त-चतुष्टय शब्द-प्रयोग मिलता है। ये चार चित्त कौन-से ? चित्त मूल वस्तु है, जिसकी विविध शक्तिया मन, बुद्धि और अहकार है। यह है मेरी राय।

विनोबा—वह तो ठीक है। कही अन्त करण पचक का शब्द-प्रयोग पाया जाता है। पाच अन्त करण तथा पाच बाह्यकरण याने इद्रिया, ऐसी कल्पना की जाती है। यहा अन्त करण मूल वस्तु और मन, चित्त, बुद्धि, अहकार उसकी विविध शक्तिया है। यहा मानना पडेगा कि एक ही मन के दो हिस्से—चित्त तथा मन—कल्पित है।

गीता मे मन और बुद्धि को मिलकर ही चित्त शब्द का प्रयोग किया गया है।

> मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धि निवेशय।
> निवसिष्यसि मय्येव अतऊर्ध्वं न सशयः।।
> अथ चित्तं समाधातु न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
> अभ्यास-योगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनजय।।

यहा पहले श्लोक मे 'मन, बुद्धि' दो अलग-अलग शब्द है और दूसरे मे इन दोनो के बदले एक ही शब्द 'चित्त' रखा गया है।

सतो का अध्ययन

मै—रामदास का अध्ययन वास्तव मे अधिक रहना चाहिए, पर दास-बोध देखकर ऐसा नही लगता। तुकाराम का अध्ययन गभीर मालूम

होता है।

विनोबा—नही। रामदास का अपने हाथ से लिखा हुआ रामायण उपलब्ध है। उनका अध्ययन गहरा था। तो भी उनका चेला कल्याण ज्यादा पढा-लिखा नही था। उसने 'माहमाया' लिखा है। तुकाराम के अभग आज शुद्ध जान पडते है। पर जगनाडे की वहिया देखने पर मालूम होता है कि भाषा कितनी अशुद्ध है। फिर भी तुकाराम ने गीता, भागवत, खासकर एकादश स्कध, एकनाथी भागवत तथा ज्ञानेश्वरी के पारायण किये थे। नामदेव, ज्ञानदेव और एकनाथ के अभग उसने कठस्थ किये थे। कबीर भी उसे ज्ञात था। अपने हाथ की लिखी गीता उसने अपने दामाद को भेट दी थी।

मै—न र फाटकजी कहते है कि ज्ञानदेव भी सस्कृत की अच्छी जानकारी नही रखते थे।

विनोबा—ज्ञानदेव का अध्ययन गहरा था। उपनिषद, योगशास्त्र, शकर, रामानुज, योगवासिष्ठ, भारत आदि ग्रथो का अध्ययन उन्होने किया था। गणेशजी के रूपक मे जिन ग्रथो का निर्देश उन्होने किया है, उनका अध्ययन उन्होने जरूर किया होगा।

मै—'वार्तिक' क्या है? "बौद्धमत-सकेतु वार्तिकाचा" इस वचन मे उसका उल्लेख है।

विनोबा—वार्तिक से वृत्तिकार सुरेश्वराचार्य आदि द्वारा लिखित बौद्धमत-खडनात्मक शाकर-भाष्य के टीका-ग्रथ निर्दिष्ट है।

पचीकरण

विनोबा—पचदशी आदि ग्रथो मे जो पचीकरण-प्रक्रिया पाई जाती है, जिसका विवरण रामदास ने किया है, वह वेदान्ती केमिस्ट्री ही है। उसे मै बहुत महत्व नही देता। फिर भी तिलक ने 'गीतारहस्य' मे कहा है कि यह प्रक्रिया महत्व की है। पर उसमे जो पाच महाभूत (पचतत्व) है, उन्हे महत्वपूर्ण समझने का कारण नही, क्योकि मूलतत्व पाच ही नही है, विज्ञान की बदौलत उनकी सख्या अस्सी-नब्वे तक पहुच गई है (आज यह सख्या तिरानवे है। ९३वी धारा की शासन-प्रणाली से मैने यह सख्या याद की है)। फिर भी तिलक का यह मतव्य गलत है। जबतक पाच

इद्रिया है, तबतक पच महाभूतो से परे ज्ञान नही जा सकता। वह विश्लेषण अबाध्य ही है।

दो परपराए—सन्त और भक्त

विनोबा—भारत मे दो परम्पराए है, एक सन्त-परम्परा और दूसरी भक्त-परम्परा। जो निर्गुणिया कहलाते है वे सन्त है। कबीर, नानक, दादू, आदि सन्त-परम्परावाले है, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई आदि भक्त-परम्परा मे है। सन्त-परम्परा का सूत्रपात बौद्धो के वज्रयान पथ तथा गोरख-नाथ से होता है। वे जाति-पाति के खिलाफ क्रातिकारी विचारवाले थे। बौद्ध आक्रमण की प्रतिक्रिया के रूप मे भक्त-परम्परा का आविर्भाव हुआ। उसका उद्भव द्रविड प्रदेश मे हुआ। रामानुजाचार्य के पूर्ववर्ती तमिल शैव और वैष्णव ग्रथो से उसकी परम्परा प्रारम्भ होती है। द्रविड प्रदेश से कर्नाटक, कर्नाटक से महाराष्ट्र और वहा से उत्तर भारत इस प्रकार भक्ति-संप्रदाय का प्रसार हुआ है। सब आचार्य द्राविड है। उन्होने काशीतक उसे पहुचाया, जहा से समूचे भारत मे उसका प्रचार-प्रसार हुआ। पुराने तमिल ग्रन्थवचनो के आधार पर तथा पुराने वैष्णव भक्ताचार्यों को आधार-भूत मानकर रामानुजाचार्य ने अपने भाष्यो की रचना सस्कृत मे की है।

ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त

मैं—गाधीजी द्वारा पुरस्कृत ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त आध्यात्मिक है या एक व्यावहारिक युक्ति मात्र ?"

विनोबा—मै उसे आध्यात्मिक मानता हू। वह व्यावहारिक युक्ति नही है। येलवाल मे जो नेतागण उपस्थित थे, उन्हे विद्यार्थियो की भाति मैने यह विषय समझा दिया। ट्रस्टीशिप की दो कसौटिया मैने उन्हे बताई। (१) पाल्य की चिंता अपने से भी अधिक मात्रा मे करना और (२) जल्द-से-जल्द सब अधिकार उसके सुपुर्द कर देना। इस दुहरी कसौटी पर आज के शासन-यत्र और धनिकशाही को कसकर देखिये तो यह दिखाई देगा कि उनकी ट्रस्टीशिप की हिमायत या दावा कितना खोखला है।

ब्याउगी : प्रात काल घूमने के समय,

२१-१२-५७

: ४३ :

सम्मेलन और क्रांति

व्याउगी मे दो दिन ठहरने के वाद जव पदयात्रा फिर से चल पडी तव हमारे दल मे रावसाहव पटवर्धन, गोविन्दरावजी देशपाडे, वावूलालजी गाधी, डोनाल्ड ग्रूम, आर्थर गोल्ड (अमरीकी ज्यू कुमार), अमरीकी दम्पती स्टॅनले वॉलपर्ट व डोरोथी वॉलपर्ट, वल्लभस्वामी तथा बगाली लोग थे। फ्रीदा हाउसवेल दास, जो मूल मे जर्मन थी, अमरीका मे बसी और अव भारतीय वनी एक वृद्धा है, हमारे साथ कल थी, पर व्याउगी से वह लौट गई।

प्रारम्भ बगाली गीतो से हुआ। विनोवा वल्लभस्वामी के साथ वोल रहे थे। उन्हे अपना नवविचार वतला रहे थे। गतव्य ग्राम चार ही मील दूर था, सो सिडेनूर पहुचने के पहले दो फर्लाग के फासले पर एक खेत मे हम बैठ गये। सूर्योपस्थान के वाद विनोवा रावसाहव से वोले—

"कैसा है नवविचार, रावसाहव ? वोलो, वल्लभ।"

वल्लभस्वामी—सम्मेलन व्यक्तिनिष्ठ न रहे। उसकी आवश्यकता भी अव नही रही। क्रान्ति के दर्शन से भी वह मेल नही खाता। देश मे कही भी सम्मेलन मनाया जा सकता है। जरूरत नही कि विनोवा वहा जाय। तुर्की मे तालीमी सघ का सम्मेलन सम्पन्न हुआ। विनोबा ने अपना सन्देश उसके लिए भेजा। सम्मेलन सफल हुआ। ऐसा होना चाहिए। अप्पासाहव के कार्यक्षेत्र रत्नागिरी मे सम्मेलन हो तो अच्छा होगा। पर अप्पासाहव राजी नही हुए।

देशपाडे—अप्पासाहव ने लिखा है कि रत्नागिरी मे सम्मेलन हो सकता है।

विनोवा—मुझे केरल जाने की प्रेरणा मिल रही है। वहा केलप्पनजी स्टेटफ्री सोसाइटी वनाने का प्रयास कर रहे हैं। राजम्मा ने लिखा है—आपके लडकी नही है। क्राति बुला रही है। चार महीने केरल मे रहिये। आगे चलकर वरसात मे तामिलनाड चले जाय। केरल मे सम्मेलन की

आयोजना फिर से करने मे कार्य मे वाधा होगी। केरल से आन्ध्र मे कडप्पा भी जाया जा सकता है।

क्राति का मेरा एक गणित है। शासनमुक्त समाज बनाना है। उसके आगे और सवाल ठहर नही सकते। व्यापक विचार दो ढग का हो सकता है। एक, पण्डित नेहरू की भाति दुनिया से सम्पर्क रखकर; दूसरा, मेरी भाति दुनिया से अलिप्त रहकर। दोनो दृष्टियो से विचार करने से सकुचित धारणा नष्ट हो जाती है और काग्रेस मे जो अदरूनी छोटे-छोटे झगडे हो रहे है, उनकी क्षुद्रता ध्यान मे आ जाती है। क्राति के लिए मुक्त चिन्तन की जरूरत है। इसलिए सम्मेलन का गठवन्धन मुझसे वनाये रखने की आवश्यकता नही है।

कर्नाटक मे तीन महीने विताये। उसके पहले तीन हजार ग्रामदान मिले थे, अब और तीनसौ पचास मिले है। हजारो-लाखो ग्रामदान होना वाकी है। एक पुराना वचन 'तुम्हारी जमीन छीन ली जायगी' वग ने उद्धृत किया है, पर इससे क्या ग्रामदान मिल सकेगे ? इसका मतलव होगा उन्हे ग्रामदान से परावृत करना। आज विचार आगे बढ चुका है। कर्नाटक मे सम्मेलन की बाते हो रही है। उसके लिए दौडेगे चिन्नय्या की तरफ, इसकी तरफ या उसकी तरफ।

वल्लभस्वामी—पर हम मागते क्या है ? ऐसी वडी यात्राओ के स्थान पर प्रबन्ध करना उन्हीका काम है।

विनोबा—पर उस काम मे कौन अगुआ बनते है, कौन प्रयास करते है ? वे, जिनका प्रभाव वढना खतरनाक है। वे सकाम है और बुरी तरह सकाम है। किसी-किसीकी सकामता अच्छी भी होती है।

गोविन्दराव—क्राति भी एक व्यक्ति से निगडित हो सकती है।

विनोबा—क्राति की दृष्टि से भी यह अच्छा होगा कि मुझे कही न जाना पडे। देश के कोने मे सम्मेलन सम्पन्न हुआ तो अस्सी हजार लोग इकट्ठे हुए। पवनार जैसे केन्द्रवर्ती स्थान मे लाखो लोग आयेगे। उसमे कुछ नियमन चाहिए। अबतक यह ठीक रहा। गाधीजी के पश्चात यह डर लगता था कि यह सब कैसे टिक पायेगा। वह डर अब नही रहा। शिवरामपल्ली-सम्मेलन के वक्त शकरराव बोले—"आप अगर आना नही

चाहते तो सम्मेलन व्यर्थ होगा। उस वक्त उनका कहना मैने माना। पर अब वैसी स्थिति नही रही। अब गोविंदराव कह सकते है—"आप अपना काम कीजिये। एस एम अपना काम करे। मै अपना काम करूगा।" इसके पहले यह कहने की हिम्मत उनमे थी नही। अब शक्ति प्रकट हो चुकी है। जवाहरलालजी, जयप्रकाशजी उसके बारे मे विचार करने लगे है।

क्राति के नये-नये मार्ग ढूढ निकलने चाहिए। सपत्तिदान का कार्य ठीक नही चल पा रहा है। सपत्ति की प्रतिष्ठा टूटनी चाहिए।

रावसाहब—सम्मेलन को आप बन्धन रूप क्यो मान रहे है?

विनोबा—कार्यक्रम निश्चित करना पडता है, सात-आठ महीने पहले। बरसात आदि का भी विचार करना पडता है। दक्षिण-उत्तर के मार्गो के अलावा एक ऊर्ध्व मार्ग भी है। उसमे कोई विघ्न-बाधा नही।

डोनाल्ड कहता है कि यह वस्तु शक्तिशाली है।

चेरियन—आपका यह विचार मुझे ठीक लगता है। ग्रामदान मिल रहे हैं, पर निर्माण-कार्य नही हो रहा है। आप मुक्त रूप घूमे। क्राति की जिम्मेदारी आपकी है। उस दृष्टि से आप मुक्त विहार कर सके तो अच्छा होगा।

विनोबा—काटिग्युअस एरिया—सघन क्षेत्र—मिलने पर निर्माण-कार्य की अनुमति मै दे दूगा। पर दो-चार ग्राम यहा, तो दो-चार वहा है, ऐसी हालत मे इजाजत नही दी जा सकेगी।

चेरियन—कुछ दिन एक स्थान पर रहा जाय तो कुछ दिन घूमने मे व्यतीत किये जाय।

विनोबा—एक जगह स्थिर रहने की बात ठीक नही। सम्मेलन के लिए कुछ नियम बनाये जाय। उदाहरण के लिए, पाचसौ मील के भीतर ट्रेन से काम न लिया जाय। सम्मेलन के अधिवेशन मे ठीक चार घटे मेहनत का काम हो, आदि। ऐसा कुछ नियमन आवश्यक प्रतीत होता है।

सम्मेलन की आवश्यकता है सही, पर उसका मेरे साथ गठबन्धन क्यो रहे? मेरी अनुपस्थिति मे अगर सम्मेलन असफल होगा तो यह हो जाय कि 'आपुले मरण पाहिलें म्या डोला' अपनी मौत मैने अपनी आखो देखी। नेहरूजी के बाद कौन? काग्रेस बिना नेहरू के बराबर क्या? यह प्रश्न पूछा

जाता है।

चेरियन—उसका उत्तर 'शून्य' नही, 'ऋणयुक्त शून्य' कहना चाहिए।

मैं—क्यो ? ग्रामदानी गावो मे नेहरू पैदा होगे। अपने-अपने गाव का प्रबन्ध कैसा किया जाय, इसका ज्ञान उन्हे प्राप्त होगा।

विनोबा—ठीक है, ऐसा हो रहा है।

गोविंदराव—यह भी हो सकता है कि विनोबा ने क्राति का ठेका लिया है, हमारे लिए सोच-विचार करने की आवश्यकता ही नही।

विनोबा—उसका मतलब यह कि विनोबा हर साल सम्मेलन मे उपस्थित रहे। चेरियन बीस महीने देश भर मे घूम चुका। यह हिम्मत न करता तो ? उसके साथ चर्चा करने नही बैठा मै। उसे जाने दिया। केवल चर्चा से वह पस्तहिम्मत हो जाता। उसके घूमने से देश का लाभ हुआ और उसकी हिम्मत बढ गई।

कर्नाटक के ग्यारह जिलो मे घुमक्कडी की। कुछ फल नही निकला। बाबा के जाने पर भी विफलता ही मिली। बाबा को अगर कुछ अहता की बाधा हुई हो तो उसके चूर-चूर हो जाने की नौबत आ गई है।

तामिलनाड मे शुरू-शुरू मे यही हुआ। केरल मे भी यही हुआ। बाद मे कसर निकल आई। केरल मे केलप्पन मिले। शकराचार्य की प्रेरणा है वह।

सिडेनूर की राह पर,
२२-१२-५७

: ४४ :

कणिका—६

सब आनंदमय

१ 'सर्वं दु:खं, सर्वं क्षणिकम्' विचार ठीक नही। सब आनन्दमय है, यह भाव चाहिए। कई लोगो का यह कहना है। मै उनका यह कहना जरूर मानूगा, पर उनको चाहिए कि वे पहले मरना छोड दे।

एस्केपिस्ट

२. जो सासारिक कर्म तथा प्रापचिक उद्योग से निवृत्त हो जाते है, एस्केपिस्ट कहकर उनकी खिल्ली उडाई जाती है। मै एस्केपिस्ट हू। घर मे आग लग गई है और कहते है कि भागो मत। क्या उसमे जलकर मरना है?

युद्ध और शांति-सेना परिणाम

३. शाति-सेना का परिणाम यह होगा कि जो मरने लायक है वे मरेगे (अर्थात् वे जो सत्य और अहिसा का मार्ग अपनाना नही चाहते)। पर युद्ध का परिणाम क्या होता है? जो सबसे लायक होते है वे ही मर जाते है।

क्लीन बम

४. एक अमरीकी मेरे पास आया था। वह बोला—अमरीका अब क्लीन बम बना रहा है। क्लीन बम वह है जो केवल अपने लक्ष्य का ही विनाश करेगा, पर हवा दूषित करना, औरो को बाधा पहुचाना आदि नही करेगा। मै बोला—सैकडो-हजारो मानवो को पगु बना दे, जिन्हे खाने को तो चाहिए, पर जैसे भूमि के भाररूप हो, ऐसा बम 'क्लीन' बम नही। बम ऐसा हो कि उसके आघात से कोई भी जिन्दा न रह सके। वही होगा क्लीन बम। पगुओ को पैदा करनेवाला 'क्लीन बम' कैसा?

ग्रामदानी गांवों मे शांति सैनिक

५. हर ग्रामदानी गाव मे शातिसेना की उपस्थिति आवश्यक है। एक लाख आवादी के लिए शाति सैनिको की सख्या वीस रहे। हरेक के साथ वे परिचय प्राप्त करे। वे इस कदर परिचित हो कि कोई भी नि सकोच-भाव से उन्हे अपना काम सौप दे। सवके दिल मे उनके वारे मे अपनापन महसूस हो।

देहात मे ऐसे लोग होते है, जो झगडे पैदा करते है। उन्हे तथा झगडेवालो को समझाने शाति सैनिक खुद जाय। नारद जैसे कस के पास जाते और कृष्ण के पास भी, वैसे ही ये सवके पास जाय। शाति की शक्ति वढाते रहना उनका काम है।

तुम लोगो को मेरी अपेक्षा अधिक तपस्या करनी पडेगी। लोगो की धारणा यह होगी कि तुम लोग पी एस पी वाले हो। मेरे वारे मे यह वात नही। मुझे वे सच्चा आदमी मानेगे। इतनी योग्यता प्राप्त करने के लिए तुम्हे वडी तपस्या करनी पडेगी।

प्रभु का दरबार लगा हुआ है

६ तुलसीरामायण का उत्तरकाड वाल्मीकि के उत्तरकाड से भिन्न है। रामचन्द्रजी लोगो के साथ अयोध्या से वाहर वगीचे मे जाकर वहा उन्हे उपदेश सुनाते वैठे है। तुलसीदास ने अपने ग्रथ की समाप्ति इस प्रकार की है। मतलव कि रामचन्द्रजी यहा इस दुनिया मे ज्ञानोपदेश करते हुए विराजमान है, उनका दरवार लगा हुआ है। यह कल्पना उसमे है।

सिडेनूर,
२२-१२-५७

: ४५ :

कणिका—७

काचन-मुक्ति का प्रयोग

१ मैं—काचन-मुक्ति का विचार लोग ठीक समझ नही पाये है। उसके बिना गाव सुखी नही हो सकते।

विनोबा—ठीक ही है। ग्राम-सेवा-मडल यह प्रयोग करे। वेतन-श्रेणिया हटाई जाय। हरेक को पाच रुपये फुटकर खर्च के लिए दिये जाय। उत्पादन अगर कम हो तो उसे बढाया जाय। चर्खा आदि की कीमत जरा बढाने मे कोई हर्ज नही। वे लोग बुद्धिमान है। उनके जैसी शक्ति अन्यत्र नही दिखाई देती।

रावसाहब—रत्नागिरी जिले मे श्री अप्पासाहब यह प्रयोग चला रहे है, पर सफलता नही मिल रही है। पुराने लोग छोडकर जा रहे है।

विनोबा—इस उम्र मे अप्पासाहब का यह प्रयोग आसक्ति कहलाने लायक है। उनको चाहिए, वह मुक्त विचार-प्रचार करें। मैं गोपुरी (वर्धा) मे इस प्रयोग के लिए तीन महीने बिता चुका हू। कठिनाई महसूस होती थी। साम्ययोग का प्रयोग चलाने को लोग तैयार थे, बशर्ते कि मैं वहा रह जाऊ, पर यह बहुत बडी कीमत वे माग रहे थे। मैंने स्वीकृति नही दी। प्रयोग सफल होने पर भी खतरा था। लोग कहते कि प्रयोग के लिए विनोबा चाहिए। अगर असफल होता तो स्पष्ट ही खतरा था। लोगो ने यह निष्कर्ष निकाल लिया होता कि विनोबा जैसो के होते हुए भी प्रयोग सफल हो नही पाया तो प्रयोग करना ही बेकार है। पर मैंने वह खतरा नही स्वीकार किया। मैं क्यो समझ लू कि ये ही लोग मेरे है ? वह गलत है। मेरा विचार कोई भी अपनायेगा और प्रयोग करेगा। एक जगह सिद्धि नही मिली तो क्या और जगह नही मिलेगी ? ऐसा मानना ठीक नही। 'पवनार का ग्रामदान बिना प्राप्त किये आगे बढने का नाम नही लूगा' कहकर मै यही रुक जाता तो ? क्राति रुक जाती। वह आसक्ति हो जाती। उत्साह चाहिए, पर आसक्ति न रहे। मुक्त विचार-प्रचार करना चाहिए।

अकिंचन पुरुष

२ जिनमे लोक-सेवा के अलावा दूसरी कामना नही, जो पूर्णरूप से निष्काचन है, निरिच्छ है, अकिंचन है, ऐसे दो सज्जन मेरे सामने है—एक मनोहर दिवाण तथा दूसरे दादासाहब पडित । मनोहरजी प्रवृत्ति पर है तो दादासाहब निवृत्ति की ओर अधिक झुके हुए ।

शिवाजी का पुनरवतार

३ तिलक से एक बार पूछा गया, "क्या महाराष्ट्र मे फिर से शिवाजी का अवतार होगा ?"

उन्होने बताया—नही । जिस महाराष्ट्र मे शिवाजी अवतीर्ण हुए, वह निरभिमान था । जहा लोग अभिमान से मुक्त है, पिछडे हुए है, वही अवतार का सभव रहता है ।

ईसा के पास कौन लोग थे ? मछुए ! पॉल से पहले एक भी शिक्षित ईसाई नही था । ईसा ने उन्हे बताया—आओ, तुम्हे मै आदमी पकडनेवाले मछुए बनाता हू !

अप्पा और रत्नागिरी जिला

४ अपने जिले का अभिमान अनुभव करनेवाला अप्पासाहब जैसा और कौन है ? यदि रत्नागिरी जिले को ग्रामदान-कार्य के लिए आप चुनेगे तो ग्रामराज्य के लिए एक अधिष्ठाता देवता आप मुफ्त मे पा जायगे ।

और रत्नागिरी को आप जीत ले तो महाराष्ट्र के दिमाग को जीत लिया समझिये ।

रावसाहब—रत्नागिरी जिले के लोकमत पर बम्बई मे रहनेवाले रत्नागिरीवालो का बडा प्रभाव है। चुनाव के वक्त उन्होने अपने-अपने घरवालो को बता रखा था कि अगर वे काग्रेस को मतदान करे तो पैसा नही भेजा जायगा ।

इग्लैड मे हिन्दी पढाइये

१ रूस मे हिन्दी सेकड लग्वेज के तौर पर कई पाठशालाओ मे लाजिमी कर दी गई है। इग्लैड मे भी हफ्ते मे दो घटे भी क्यो न हो, अनिवार्य रूप मे पढाई जाय, स्नेह की निशानी के रूप मे। फल यह होगा कि भारत मे जो वामपक्षीय चिल्ला रहे है कि भारत कॉमनवेल्थ से सम्बन्ध-विच्छेद कर दे, उसमे रुकावट आ जायगी। भारत और इग्लैड के बीच स्नेह-सम्बन्ध की वृद्धि होगी।

हिन्दुस्तान और इग्लैड

२ हिन्दुस्तान और इग्लैड दो ऐसे देश है कि जो मेरी यूनिलैटरल नि शस्त्रीकरण की कल्पना को मूर्त रूप दे सकेगे, हिन्दुस्तान अपनी आध्यात्मिकता के बल पर और इग्लैड अपने वैज्ञानिक प्रभाव के कारण।

विनोबा से रोष क्यो

३ कई गुजराती लोगो का कहना है कि विनोबा कम्युनिस्टो को बढावा दे रहे है। गाधीजी अगर होते तो वे ऐसा कभी न करते। हम करते क्या है? जो अच्छा काम करते है, उन्हे आशीर्वाद देते है। वह आशीर्वाद न व्यक्ति के लिए है, न पक्ष के लिए, वह उस सत्कर्म के लिए होता है।

पर कम्युनिस्टो को चुनाव मे खडे रहने की इजाजत सरकार ने ही दी, उन्हे सरकार बनाने दी उनके हाथ बजट सुपुर्द किया और राजेन्द्रबाबू ने उन्हे अच्छे काम के लिए प्रशस्तिपत्र भी दिया है।

वे विनोबा पर गुस्सा इसलिए करते है कि विनोबा से उन्हे प्रेम है। उन्होने उसकी एक मूर्ति बना ली है, जिसकी नाक उन्हे ठीक दिखाई नही देती। इस कारण वे चिढ जाते है। गुजरात मे यह चिढ अधिक मात्रा मे है। उन्होने विनोबा को अपना मान लिया है न।

गाधी-विचार कैसा !

४. गाधी-विचार क्या चीज़ है? मुझे दो ही प्रकार ज्ञात है—सत् और असत्। इन्ही दो विशेषणो को मै पर्याप्त मानता हू।

मेरा मुक्तसंकल्प होना

५ मुक्तसकल्प होकर मै महाराष्ट्र मे आ रहा हू। इसका आशय यह है कि महाराष्ट्रवाले कृतसकल्प बने, अन्यथा वह एक मुक्तसकल्पो का जमघट बन जायगा।

'चिन्नमुलगुंद के मार्ग पर,
२३-१२-५७

: ४६ :

पाठशाला और शिक्षा

बृहदारण्यकोपनिषद् मे हृदय की आकाश से तुलना की है। विशाल हृदय क्लास मे, कमरे मे बैठकर नही बनेगा।

उभे अस्मिन् द्यावापृथिवी समावृते। विद्युत्-नक्षत्राणि च।
यच्च अस्ति यच्च नास्ति तदस्मिन् समाहितम्।

ऐसे स्थान पर बैठकर स्वाध्याय किया जाय।

सस्कृत मे 'घर' के लिए 'दम' शब्द है। इसीसे मॅडम, डोमिसाइल आदि शब्द निकले हैं। 'दम' से मतलब है दमनसाधन से। वह शब्द सुझाता है कि घर मे रहनेवालो को चाहिए कि वे अपना दमन कर ले। उल्टे वन से मतलब है आनन्द लूटने से (एजायमेट से)।

हम एक अग्रेज़ी कविता सीखते थे.

Home, home, sweet home,
There is nothing like home

इससे यह समझते थे कि घर नाम की कोई चीज है नही।

रावसाहब—लायब्रेरी मे आप कपडे उतारकर बैठ जाते थे न?

विनोबा—मुझे प्रिन्सिपल के पास ले जाया गया। मैने कहा—इसीको भारतीय सस्कृति कहते है।

आकाश के नीचे बुद्धि का अच्छा विकास होता है।

चेरियन—बापू हमेशा कहा करते थे कि खुले मे रहो।

अध्ययन की बात छिड जाने पर ग्रन्थालय का जिक्र किया जाता है। पर वह गलत है। हमे सृष्टि के साथ तन्मय होना चाहिए। पुस्तके उसमे रुकावट डालती है।

'पलालमिव धान्यार्थी'—मनुष्य मे वह शक्ति आनी चाहिए, जिससे वह ग्रन्थो मे से सार ग्रहण कर सके। जो उसमे थोथा है, फूस है, उसे उडा देने की क्षमता मनुष्य पा जाय।

भूदान-कार्यकर्ता के लिए यह नियम बनाया जाय कि वह हर रोज सवेरे इस प्रकार सूर्योदय के समय खुले आकाश के नीचे खेत मे बैठकर अध्ययन करे।

पाठशाला मे स्थिति भयानक रहती है। खिडकिया इतनी ऊचाई पर रहती है कि बाहर की चीजे न देखी जा सके। दीवार मे काला रग लगा रखते है, मानो वह जेलखाना हो। पाखाने मे इस प्रकार का काला रग रहता है।

रावसाहब—शातिनिकेतन मे रवीन्द्रनाथ ने खुले आकाश के नीचे बृक्षो की घनी छाया मे वर्ग रखने की प्रथा शुरू की थी सही, पर अब वहा उसका क्या बाकी रहा है? अन्य विश्वविद्यालयो की अपेक्षा वहा का काम बिगड गया है। वह फैशन-यूनिवर्सिटी बन गई है और वहा पडितजी जाया करते हैं। वह वहा हरगिज़ न जाय।

विनोबा—शहरो मे ज्ञानवानो के जो कॉन्सेट्रेशन कैम्प बन गये है, उनसे उन्हे खदेड बाहर कर देना चाहिए। वे देहातो मे फैल जाय। आज की शिक्षा-पद्धति की असफलता के कारण खोज लेने चाहिए। हमारी तरफ सस्थाए जल्द ही डूबने को होती है। पर उधर यूरोप मे तीनसौ बरस से यूनिवर्सिटिया चल रही है और आगे भी बनी रहेगी।

हमारी शिक्षा-प्रणाली भिन्न है। उसे आश्रमपद्धति कहते है। क्या है उसका रहस्य? उसका रहस्य यही था कि लोगो के स्तर की अपेक्षा हमारा स्तर उच्च नही हुआ करता। आज क्या हालत है? लोग घर-घर मे हर रोज मासाशन नही करते, पर अलीगढ विद्यापीठ मे हर रोज दस तोले मास हर विद्यार्थी को मिलना ही चाहिए, मानो वह रातिब ही ठहरा। मासा-

शन नही करना चाहिए, यह बात तो दूर रही, लेकिन वह हर रोज खाया जाय, यह दैनिक व्यवहार बन बैठा। इसके कारण सयम, भक्ति, ज्ञान की वृद्धि रुक जायगी।

एक तो यह बात है कि हमारा आदर्श कृत्रिम है, दूसरे अग्रेजी भाषा का बोझ ढोना पडता है। हमारे सारे विद्यार्थी उस बोझ के नीचे दब-से गये है। उनकी बुद्धि कुठित हो गई है, पराक्रम मर चुका है। उधर पिट २१ साल की उम्र मे प्रधानमन्त्री बन गया। इधर क्या यह बात पहले नही थी ? माधवराव पेशवा २१वे साल मे गद्दी पर बैठा, और बिखरा हुआ राज्य दस साल मे सुधार दिया। दस साल मे मराठा शक्ति तैयार कर दी। आज हम उसकी कल्पना तक नही कर सकते। आज तो २१वे साल मे लडका सीखता ही रहता है। 'गुलीवर्स ट्रैवल्स' पढता है। उधर इग्लैड मे दस-बारह साल के लडके वह पुस्तक पढते है। 'विकार ऑव वेकफील्ड' और रोबिन्सन क्रूसो! उसमे क्या है ? सोलहवे साल मे ज्ञानेश्वर ने ज्ञानेश्वरी की रचना की। भाऊसाहब पेशवा ने लडाइया जीती। अग्रेजी के बोझ से हमारे बच्चे हतवीर्य हो गये है। अग्रेजी के कारण कितना शक्तिक्षय होता है देखना हो तो इग्लैड मे सब विषय तमिल के माध्यम से पढाइये तो ध्यान मे आ जायगा। अग्रेजी की पढाई भी अंग्रेजी द्वारा हो! यह कैसी जबरदस्ती है! हमारे समय मे जब वर्ग मे जाना होता था, तब हिम्मत न होती थी कि हमारी जाति के हमारी ही भाषा बोलनेवाले अध्यापक से मराठी मे बोले। 'May I come in, sir ?'[१] कहना पडता था। इसके बावजूद हिन्दुस्तान के लोगो ने काफी सत्त्व दिखा दिया, ऐसा कहना पड़ेगा।

एक दिन हमारे प्रिन्सिपलसाहब 'इनडिस्पोज्ड'[२] थे। वह कालेज नही आये। तब मेरे वर्ग के विद्यार्थियो ने मुझसे वर्ग पढाने को कहा। मैने उन्हे बताया—देखो हमारा अश्व है न, वह अग्रेजी मे Ass (गधा) बन जाता है, और हमारा 'कुत्ता' Cat (बिल्ली) बन जाता है। सब हँस पडे। मैने उन्हे बताया कि आज बारहसौ की तनख्वाह का मैने काम किया! साहब क्या पढाता है ? 'Light Foot, White Foot!' क्या यह कविता है ?

---

१ क्या मै अदर आ सकता हू ? २ अस्वस्थ

उसकी वह मातृभाषा है और वह कविता छोटे बच्चो के लिए लिखी हुई है। उसके दिमाग को जरा भी तकलीफ सहनी पडती है ? अग्रेज़ी के इस बोझ की बदौलत तत्त्वज्ञान हासिल नही होता, तत्त्वज्ञानात्मक भूमिका नही बन पाती।

चेरियन—केरल का एक व्यक्ति इग्लैड से पढकर आया। वह कहता था—"क्या कहू, इग्लैड मे सब सुशिक्षित है, सब अग्रेजी बोलते हैं। मै एम ए उत्तीर्ण होकर भी उनके नाई के माफिक भी अग्रेजी नही बोल सकता।"

सकामता का खतरा

विनोबा—धर्म को अधर्म से उतना खतरा नही, जितना सकामता से। इसलिए हमे चाहिए कि हम सद्भावनावान् लोगो को ही इकट्ठा कर ले। सज्जनो का सग्रह कर ले। वही सच्ची बुनियाद होगी। वही पक्की नींव है हमारे कार्य की। वजनदार प्रभाववाले लोगो की खोज मे न रहे, उनके पीछे न पडे। वे मतलब लेकर आया करते है। सकाम आदमी भेडिया बन जाता है। सज्जन आदमी ढूढने मे समय लगेगा, पर वे ही पक्की बुनियाद हैं। चालीस साल पहले हम मिले थे। उन दिनो इस्लामपुर मे श्री गोडबोले रहते थे। उनके साथ मैंने तुकाराम के अभगो के विषय मे कुछ चर्चा की थी। चालीस साल बाद अब उन्होने पत्र भेजा है और अपने सुधारमण्डल के लिए शुभ कामनाओ की माग की है।

कोड के मार्ग पर,
२४-१२-५७

: ४७ :

निरुपाधिक महाराष्ट्र-प्रवेश

शास्त्रकारो का असर

विनोबा—महाराष्ट्र के लोग जाना चाहते थे। उन्हे मैने रोक रखा। मै उनके साथ बोलना भी चाहता था। मै कह रहा हू कि निरुपाधिक होकर मै महाराष्ट्र-प्रवेश चाहता हू। यह विचार तो नया नही है। बीस बरस पहले जब पवनार गया, तबसे निरुपाधिक बना हू। फिर भी बाह्य उपाधि को भी टालना चाहता हू। जितनी टल जायगी उतना ही अच्छा। शास्त्रकारो ने वैसा कहा है। शास्त्रकारो का यह असर है। बाह्य उपाधि जिस कदर कम होती जायगी उस कदर विचार की गहराई, व्यापकता और शक्ति बढ जायगी। उपाधित्याग इष्ट था ही। काल की दृष्टि से सन् ५७ समाप्त होने को है, ५८ के प्रारम्भ मे, और देश की दृष्टि से महाराष्ट्र मे उपाधित्याग करने की सोच रहा हू। दो योग इकट्ठे आ गये है, कपिलाषष्ठी का योग ही इसे समझा जाय।

अन्तर्निष्ठा ही प्रमाणभूत

मन मे तो विचार है सबकुछ छोड देने का। शरीर भी एक उपाधि ही है और भाषा भी। दोनो का त्याग करने पर भी काम पूरा नही होता। मौन भी उपाधि ही है। मेहरबाबा कई सालो से मौन साधे बैठे है। वर्ण-माला का फलक लेकर उसपर संकेत उगलियो से करते है। यह भी उपाधि ही है। बोलने या न बोलने पर मेरा भरोसा नही। अन्तर्निष्ठा पर ही मै निर्भर हू। निरुपाधिक होने का मतलब बाह्यकृति-रहितता से नही। गीता ने कहा ही है—"पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन् गच्छन् स्वपन् प्रलपन् विसृजन् गृह्णन् उन्मिषन् निमिषन् अपि" ये सारी क्रियाए ज्ञानी करेगा। तो पूछा जाता है कि क्या वह हत्या करेगा। वह बोलेगा, पर व्याख्यान नही सुनायेगा, वह आसू बहायेगा, पर रोयेगा नही, वह आनन्द करेगा, पर हँसेगा नही, वह खून नही करेगा, पर गला काट सकेगा। यह डा० दातार है, क्या इन्होने चीर-फाड नही की ? ज्ञानी पुरुष सब बुनियादी क्रियाए

करता है। हम तो ज्ञानी नही है। अभिनय से थोडे ही काम बनेगा ? अज्ञान के होते हुए भी ज्ञानी का स्वाग थोडे ही रचा जाय?

हेतुरहित पर निष्प्रयोजन नही

कन्याकुमारी मे सकल्प किया गया है, उसके मुताबिक काम तो जारी रहेगा ही। गीता मे लिखा है—जो कर्म का फल न देखते हुए काम करता है वह तामस कर्ता कहलाता है, अथवा इसका यह न्याय भी मशहूर है—**प्रयोजन अनादृत्य न अदोऽपि न प्रवर्तते।** सो ज्ञानी की क्रिया मे प्रयोजन रहेगा, हेतु नही। ग्रामदान का प्रयोजन रहेगा, पर वह हेतु नही रहेगा। ग्रामदान मिल जाय तो ठीक ही है, न भी मिले तो दूसरे काम होगे।

ज्ञान-गगा बहती ही रहेगी

भूदान गगा के छ भाग प्रकाशित हुए है। उन्हे तो खरीदना ही पडेगा। नौ रुपये उनके लिए खर्च करने पडेगे। हमारी वाणी तो बहती ही रहेगी और ग्रथ बनेगे। ग्रामदान पर बोलना छोड देने पर भी अधिक ग्रथ होने की सम्भावना है। फिर भी चाहता हू कि सन् ५८ से और महाराष्ट्र से निरुपाधि बनकर विहार करू। गुरुबोध मे कहा ही है—**'स्वरूपावबोधो विकल्पासहिष्णु'** उसके अनुसार चलना है।

सर्वभूतहृदय होना नही

साने गुरुजी का शिष्य मोहाडीकर आया था न बुलाने ? 'अहेतुक बनकर आऊ तो तुम्हारा काम बन जायगा,' मैने कहा। पानी समुद्र से मिलने जाता है। लोग अपनी-अपनी इच्छा के मुताबिक उससे काम लेते है। इसके अनुसार जिसने हेतुत्याग किया, उससे लोगो के अनेक हेतु सिद्ध होगे। आज क्या होता है ? बडे-बडे जमीदार हमसे दूर रहते है। कई एक तो गाव छोडकर भाग जाते है। तो हम कहते है कि वे हमारे ही लिए सब छोडकर चले गये है। यह तो मजाक मे कहता हू। पर यह सर्वभूतहृदय बनना नही। उसे डर लगता है और इसका अर्थ यह है कि हम पूर्णरूपेण निर्भय नही हुए।

गोविन्दराव कहते है, इससे लोग अपना-अपना उल्लू सीधा कर लेगे। क्यो न कर ले ? एक बार आर एस एस वालो ने मुझे हनुमान-जयती के

अवसर पर बुलाया। मैने स्वीकृति दी तो कांग्रेसवाले मित्र बोले—"यह ठीक नही हुआ।" मैने कहा—"क्या रावण-जयंती का निमत्रण मैने स्वीकार किया ? मैने तो हनुमान-जयती के लिए जाना कबूल किया है।" वे बोले—"पर उनका मतलब तो पूर्ण हो जाता है।" मै बोला—"मेरा भी मतलब सिद्ध हो जाता है न !" "आपका क्या मतलब ?" "उनसे मिलना। यही मेरा मतलब है।"

दो बल . हनुमान और रावण

ये काग्रेसवाले इतना सेक्युलर बन गये है कि हनुमान-जयती जैसे धार्मिक सामाजिक अवसर पर भी कही नही जायगे। मै वहा गया और उनसे क्या कहा ? मैने कहा—"रावण भी एक प्रकार के बल का प्रतिनिधि है और हनुमान भी एक प्रकार के बल का। पर हम रावण-जयती नही मनाते। हनुमान-जयती मनाया करते है। क्यो ? क्योकि वह "**बल बलवतामस्मि कामरागविवर्जितम्**", कामराग-रहित बल का प्रतिनिधि है।"

दूसरी बात मैने उनसे कही—"आप यहा अखाडे मे आते है तो क्या कुछ फीस भी लेते है ?" वे बोले—"जी हा, चार आने लेते है।" मै बोला—"यह तो उल्टी बात करते है। वे यहा आकर कुछ काम करते है तो आपको चाहिए कि आप ही उन्हे कुछ मेहनताना दे दे। पर यहा मेहनत कैसी ? बेकार उठने-बैठने की। आपको उत्पादक परिश्रम करना चाहिए। आप अगर अनाज पैदा नही करेगे तो आपके शरीर मे बल का सचार कैसे होगा ? अन्न ही बल है।"

मेरे साथ मेरे मित्र भी आये थे। वह बोले—आपने बहुत अच्छी बाते कही। मै बोला—हम खराब कब बोलते है ?

सगठन करेगा सो मार खायेगा

महाराष्ट्र मे मै सबसे मिलूगा। जो हेतु को लेकर जायगा वह महाराष्ट्र के दो टुकडे कर देगा। उससे एकता के बजाय झगडे बढेगे। महाराष्ट्र मे जो ऑर्गनाइजेशन करेगा, वह मार खायेगा, क्योकि उसकी प्रतिक्रिया अवश्य ही होगी। वहा एक से बढकर एक सगठन है। महाराष्ट्र को ज्ञानदेव ने वश मे किया। वह निर्हेतुक, निरुपाधि रहे।

रावसाहव—फिर तो स्वागत-समिति की गुजाइश ही नही रही।

विनोवा—वह तो आप देख ले।

हिरेकेरूर के मार्ग पर,
२५-१२-५७

•

: ४८ :

विश्वलिपि : नागरी व रोमन

नागरी, लोकनागरी और रोमन लिपियो के वारे मे आज काफी चर्चा हुई। विनोवा ने वताया—रोमन लिपि के गुण नागरी मे लाने हो तो आज के सव व्यजनाक्षर हलन्त चिह्न के विना ही हलन्त मान लिये जायं और उनके वाद स्वराक्षर लिखे जाय। यह लिपि विश्वनागरी कहलायेगी। यह विश्वनागरी छपाई तथा टक-लेखन मे इस्तेमाल की जाय। लिखने के लिए दूसरी है ही। हाल मे व्याकरण तथा कोश मे उसका प्रयोग हो।

दुनिया मे अवतक यूरोप का दाव (इनिंग्ज) रहा। अव वह खत्म होने को है। इसके आगे एशिया का दाव चलेगा। हिन्दुस्तान अगर पराक्रम करेगा, याने दुनिया के सवाल हल करेगा तो उसकी नागरी लिपि विश्व-लिपि वनेगी। जापान पराक्रमी ठहर जाय तो जापानी को वह भाग्य मिलेगा। कौन-सी लिपि चलेगी यह उसके गुणो पर निर्भर न रहकर परा-क्रम पर अवलम्बित हे। पहले एशिया की मात रही, उसके वाद यूरोप की वारी आई। अव यूरोप के खेल खत्म होने पर है। दुनिया के सवाल हल करने मे उसके सफल होने की सम्भावना नही। उसके लिए नवदर्शन की जरूरत है। वह भारत के पास है। दक्षिण भारत और उत्तर भारत के वीच भी इस प्रकार की हार-जीत वारी-वारी से होती आई है।

तदेतत् (सत्यम्) त्र्यक्षर उपासीत (वृ० ५-५-१)। यह उपनिषद्-वचन है। अर्थात् स-ति-यम् ये तीन अक्षर उनके कल्पित थे।

मै—हमारी वर्णमाला मूलाक्षर कहलाती है। मतलव कि वे मूलत

ही क क्ष ज्ञ जैसे स्वरात है। इसलिए उन्हें अक्षर कहते हैं। हलन्त चिह्न वाद मे जोड़कर उन्हे हल बनाया जाता है। तो भी विश्वनागरी बनाने मे कोई बाधा नही। पर उसका चलन दूरापास्त है। वह एक भयानक क्राति होगी। दो या अधिक वर्ण आखो से देखकर उनका एक उच्चारण करना ऐसी प्रक्रिया है, जो नागरी की एक अक्षर के लिए एक उच्चारवाली प्रक्रिया के बिल्कुल विपरीत है। उदाहरण लीजिये—कार्त्स्न्यं दो अक्षर-वाला शब्द है, द्वावयवी शब्द है। वह क आ र त स न य अ इस प्रकार अष्टावयवी लिखना पडेगा और उच्चारण मे सिर्फ दो अक्षर रहेगे। यह वात भयानक है। अब रोमन लिपि मे यह बात है ही। पर शुरू से उसकी रचना वैसी रही है, इस कारण वह खटकती नही। Kartsnya पढने मे दिक्कत नही होती। पर क आ र त स न य अ को कार्त्स्न्यं पढने मे पहले अक्षरो का अक्षरत्व भूलना, वाद मे उन्हे व्यजन के रूप मे स्मरण करना, फिर उनका सयोग करना और अन्त मे उच्चारण करना आदि क्रियाए करनी पडेगी। पूर्वाभ्यस्त मन इतना परिश्रम करने को तैयार नही होता। रोमन लिपि के वारे मे इतना घटाटोप नही करना पडता। इसलिए वही लिपि स्वीकृत हो, यह है मेरी राय। पूर्व प्रकाशित ग्रथ उस लिपि मे फिर से छपवाने पडेगे, पर यह आपत्ति विश्वनागरी के वारे मे भी होगी। इसके अलावा रोमन लिपि के स्वीकार से आज ही लिपि की दृष्टि से समूचे ससार का एकीकरण हो जाता है, नवनवीन भाषाए सीखने मे एक लिपि कहातक सहायक होती है, आपको तो वताने की जरूरत नही। मै तो कहना चाहूगा कि इसके प्रारम्भ के रूप मे 'गीता-प्रवचन' हिन्दी रोमन लिपि मे छपवाकर प्रसारित किया जाय।

हिरेकेरूर की राह पर,
२५-१२-५७

: ४९ :

भयानक प्रजावृद्धि और ब्रह्मचर्य

विनोवा—प्रजावृद्धि वेहद हो रही है। यह एक वुनियादी समस्या उठ खडी होती है। इस प्रजा के पोषण के लिए हर चूहा और हर हड्डी तक काम मे लानी पडेगी। यह सव मुझे तो नीरस लगता है। प्रजोत्पादन मे कुछ मर्यादा रहे, नही तो समूचे प्राणिजगत् का खात्मा हो जायगा। काठियावाड के सिंह नष्ट होने लगे ही थे। कल गाय भी गायव हो जाने की नौवत आयेगी। उसके विना हमारा काम नही चलता, इसीलिए वह आजतक वची है। पर कल प्रजा-वृद्धि के साथ विना वैलो की खेती अधिक फायदेमन्द होगी। तव वाघ से जो दुश्मनी है वही गाय से भी शुरू होगी। ईश्वर ही सहार-कर्ता है, सो वात नही, मानव भी सहार कर सकता है। कल आप तय करेंगे तो गिन-गिनकर एक-एक कुत्ते का और मवेशी का सहार आप कर डालेंगे। मानव मानव का दुश्मन वनेगा। एक समाज दूसरे समाज का खात्मा कर डालने पर तुल जायगा। नीग्रो, रेड इडियनो का सहार हो ही चुका है। विहार साफ कर लेने से वस्ती के लिए वढिया प्रदेश मिल जायगा, इस विचार से वह वेचिराग किया जा सकता है।

साइस के वल पर, विज्ञान के वूते पर, उत्पादन वढाया जा सकता है। पर उससे क्या होगा? वासना पर अकुश न हो तो उससे काम नही वनेगा। इन्सान सर्व-भक्षक वन जायगा। एक तरफ कोढियो की तादाद वढती जायगी तो दूसरी तरफ उनकी सेवा के प्रवन्ध से क्या होगा? कितनो की सेवा आप कर सकेंगे? जो काम अपने से पूरा होने की सभावना नही, उसे करते रहने से क्या लाभ? Getting and spending is sheer waste of Power अर्थात्—"लेकर खर्च कर डालना सत्ता का महज अपव्यय है।" जिसे हम पूरा कर सकते हैं, उसे ही हाथ मे ले ले।

कल अगर सौ मे से पचास लोग ब्रह्मचर्य का पालन करना तय कर ले तो क्या नही होगा। ब्रह्मचर्य की आवश्यकता सिर्फ आध्यात्मिक दृष्टि से ही नही, सामाजिक दृष्टि से भी महसूस हो रही है। केवल फैमिली प्लैनिंग

(परिवार-नियोजन) से काम नही बनेगा, सामाजिक नियोजन करना पड़ेगा। आश्रम-विचार और क्या है ? वह पुराना समाज-नियोजन ही है। जगत् के दु ख की जड तृष्णा मे है। बुद्ध ने इसे पहचाना और तृष्णा-निरोध का मार्ग दिखाया। बिना वासना-नियमन किये सुख नही मिलेगा। पर ब्रह्मचर्य के बारे मे बोलने की किसीमे हिम्मत ही नही। विज्ञान सयम को, ब्रह्मचर्य को क्यो न बढावा दे दे ?

: ५० :

कणिका—८

सूर्योपासना नही, सत्योपासना

१. सूर्योदय के वक्त खडे या बैठे 'सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा' आदि उपनिषद्-वचन विनोबा कहते है, वह ईश्वरोपासना है, सूर्योपासना नही।

जयदेव बोला, "सूर्योदय नही हुआ।"

विनोबा ने कहा, "सूर्योदय से हमे क्या वास्ता ? हम सूर्योपासना नही करते, सत्योपासना, ईश्वरोपासना करते है।

... ...

मा का अतिम सस्कार और मेरा आग्रह

२ मा की मृत्यु के वक्त मै अतीव कठोर बना। मेरा मन्तव्य था कि ब्राह्मणो के हाथो विधि को नही करना है। पिताजी बोले—मा की श्रद्धा के अनुसार चलना हमारा कर्त्तव्य है। मै बोला—मेरा विश्वास है कि मा मेरे ही हाथ का अत्य सस्कार पसद करेगी। लोगो ने कहा—अपना आग्रह आगे कभी चलाना। अब ब्राह्मणो द्वारा सस्कार हो जाय। मै बोला—जी नही, अपने तत्त्व पर अडिग रहने की यहा वेला है। मा दुबारा नही मरती। यही है कसौटी का क्षण। मै अडिग रहा। गोपालराव ने ऐसे हर अवसर पर तत्त्व के खिलाफ बर्ताव किया। मैने अगर पाप किया हो तो

वह प्रचुर मात्रा मे किया, पुण्य किया हो तो प्रचुर मात्रा मे, इसमे कोई शक नही।

पिताजी योगी थे

३ पिताजी बडे नियमबद्ध थे। वह शारगपाणीजी के यहा हर वार को जाया करते। एक नियत कुर्सी पर बैठकर उनके साथ एक घटा गपशप मे विताते और लौट आते। यह उनका सिलसिला बरसो तक जारी रहा। उसमे कभी विच्छेद नही आया। कभी समयाभाव के कारण शारग-पाणीजी घर पर न रहे तो भी हमेशा की भाति वह उतना समय बिताकर ही लौटते। बडौदा मे शारगपाणीजी के यहा मै गया था, तब उन्होने मुझे यह बात बताई और उनकी कुर्सी भी दिखाई। पिताजी की यादगार मे उन्होने वह कुर्सी वैसी ही रखी है। वह बोले—तुम्हारे पिताजी योगी थे।

पिताजी से शास्त्रीय वृत्ति सीखी

४ पिताजी ने अपनी मधुमेह की बीमारी पर अपने नियमित और वैज्ञानिक आहार-प्रयोगो से काबू प्राप्त किया था। घुटने की बीमारी भी उन्हे आखिर तक सताती रही। जलोदर से उनका अन्त हुआ। उनसे मैंने शास्त्रीय प्रवृत्ति सीख ली है। कुदर ने मुझपर आलोचना की कि मैंने उनकी लाश को यथाविधि नहलाया नही। पर जल्द-से-जल्द मैंने उसे अग्नि-सात् किया।

गुरु-बोध

५ श्री शकराचार्य ने 'वाक्य-विचार' को मुख्य उपासना के रूप मे माना है। गीति, भक्ति, वेदान्त-पाठ, उपनिषद्-पद्धति, वाक्य-विचार यह अनुक्रम रखकर अत मे अपरोक्षानुभूति तथा विवेक चूडामणि, जो कि पूर्ण विचारवाले ग्रथ है, सक्षेप मे रखे गये है।

तत किम् से अनात्मश्रीविगर्हण से लेकर ही साधना का प्रारभ होता है।

भूयो मित्र पूरितो वा तत. किम्—मित्र शब्द पुल्लिग मे प्रयुक्त हुआ

है, सो क्यो ? यह प्रश्न श्री पण्डित द्वारा पूछा गया था। मैंने लिख दिया—मैं अपने सारे मित्र-पुरुष ही देख रहा हू।

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति—यह स्तोत्र आद्य श्री शकराचार्य-रचित नही माना जाता है। पर मेरी राय मे वह निश्चित रूप से उन्हींका है। लौकिक भावो से समरस होकर उन्होने वह लिखा है। कवि ऐसा तो किया करते है। उसमे जो उम्र का निर्देश है वह श्लोक बाद मे प्रक्षिप्त होगा।

डा० वेलवलकरजी की सम्मति मे 'वेदो नित्यमधीयतां तदुदित कर्म स्वनुष्ठीयताम्' आदि श्लोक-पचक शंकराचार्य रचित नही है। पर मैं उसे उन्हींका रचा हुआ मानता हू। 'निजगृहात् तूर्णं विनिर्गम्यताम्' कहते ही मै जोश मे आ जाता हू।

• • •

वेद और वेदार्थ

६ वेद मे मित्र शब्द पुंल्लिग मे प्रयुक्त है, वह सिर्फ सूर्य का ही वाचक नही। 'मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाण' वह मित्र भी हो सकता है। वेद का 'अश्व' और लौकिक सस्कृत का 'अश्व' एक नही। सस्कृत का अश्व याने घोडा, पर वेद का अश्व केवल घोडा नही है।

वेदो का चुनाव मैं दो प्रकार से करना चाहता हू। एक आध्यात्मिक दृष्टि से सर्वजनोपयुक्त भिन्न-भिन्न मत्रो का चुनाव, और दूसरा एक सपूर्ण मडल का अर्थ-निर्धारण। यह दूसरा प्रकार वेदो का समग्र अर्थ-निर्धारण किस प्रकार किया जाय दिखाने के लिए। वह विद्वानो के लिए मार्गदर्शक रहेगा।

• • •

वैदिक ध्यानयोग के ध्यान मे ठीक पैठे बिना, वेदो का स्वच्छ दर्शन हुए बिना वेद के विषय मे लिखने का मेरा विचार नही। जो लोग इनके बिना वेद पर लिखते है, वे वेदो का अपकार करते है। बिभेति अल्पश्रुतात् वेदः मां अयं प्रहरिष्यति इति।

• •

उपनिषद् और विचारपोथी

७ उपनिषद् भिन्न-भिन्न नोट्स के सग्रह है। बहुत-सी पुनरावृत्ति है, 'अब वायु, तेज आदि शब्दो से वाक्य बनाओ' कहने जैसी वात है। उपनिषदो के वारे मे मुझे कुछ खास वात नही करनी है। उपनिषदो का अध्ययन, ईशावास्यवृत्ति तथा विचार-पोथी मिलाकर एक पुस्तक बनाई जाय। विचार-पोथी उसी किस्म की पुस्तक है। यो तो सब उपनिषद्-साहित्य ॐकार मे समा गया है।

... ...

मेरा 'पचामृत'

८ जेल मे मुझसे पूछा गया कि हिन्दुधर्म का प्रमाण-ग्रथ कौन-सा है। मैंने बताया—हमारा पचामृत। यह अबतक बना नही। ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम और रामदास के सारसग्रहो का सार।

... ...

धार्मिक मनुष्य का विचार

९ मुझे १५ रुपये पारितोषिक के रूप मे मिले थे। उस रकम से पुस्तके खरीदनी थी। मैंने एकनाथी भागवत की प्रति खरीदी। शकर तगारे उसे पढने के लिए ले गया। उसके पिताजी धार्मिक प्रवृत्ति के थे। पर उन्होने देखा, यह एकनाथी भागवत पढ रहा है। उन्होने मना किया। बोले—"यह अवस्था उसे पढने के लिए योग्य नही। अपना स्वाध्याय छोडकर यह क्या कह रहे हो?" तव उसने पिताजी से छिपकर वह पुस्तक पढी। उन्होने यह नही कहा कि वह किताव विल्कुल पढी ही न जाय। यही विशेष बात है। पर एक धार्मिक मनुष्य का यह विचार है तो आर्थिक मनुष्य का क्या होगा, देखिये। त्रैराशिक का उदाहरण है।

... ...

चुनाव मे मेरी दृष्टि

१० ज्ञानदेव, नामदेव आदि से तथा गुरुवोध मे मैंने जो सकलन किया है, उसमे मेरी दृष्टि साहित्यिक रसग्रहण की नही। उसे पढकर मूल की तरफ पाठक खिंच जाय, यह उद्देश्य नही। मेरा चुनाव ऐसा है कि उसे पढ-

कर मूल ग्रंथ को देखने की आवश्यकता महसूस न हो । उस ग्रथ का सार-भूत अश सकलन मे सगृहीत हो । उसे पढकर कोई मूल ग्रथ पढने लगे तो मूल ग्रथ के बारे मे उसका आदर-भाव कम हो जायगा, बढेगा नही, क्योकि उसमे सिर्फ छाछ ही मिलेगा ।

• • •

पष्ट और स्पष्ट

११ 'येथ बोलिलें पष्ट हरिभजन' रामदास की इस उक्ति मे 'स्पष्ट' के बदले 'पष्ट' शब्द आया है । वह 'स्पष्ट' की अपेक्षा स्पष्ट और जोरदार मालूम देता है ।

हिन्दी मे 'स्पष्ट' का 'अस्पष्ट' हो जाता है । कौन कहेगा कि उसकी तुलना मे 'पष्ट' अधिक स्पष्ट नही है ? 'अस्तुति निंदा दोऊ त्यागे' इसमे अस्तुति याने स्तुति । स्तुति का ही अस्तुति बना है ।

•

डिक्टेफोन नही चाहिए

१२. डिक्टेफोन की आवश्यकता नही । वह हमारा साधन नही । उस पर मेरा भरोसा भी नही । उससे प्रचार नही होता ।

... ... •

सुवर्ण-ककणवत् विवर्त

१३ ज्ञानेश्वरी मे रज्जुसर्पवाला दृष्टान्त है । अमृतानुभव मे सुवर्णककण का है । पहला है अपरिपक्व मानसवालो के लिए, दूसरा है परिपक्व मानस-वालो के लिए । पहला विवर्तवाद है, दूसरा परिणामवाद माना जायगा । पर वह भी विवर्त ही है । विचार-पोथी मे यह विचार आया है—'मैं सुवर्ण-ककण विवर्त मानता हू ।'

हिरेकेरूर : प्रात घूमने के समय,
२६-१२-५७

: ५१ :

जय शम्भो ! जय महावीर !

रतलाम का मदिर जैन और सनातनी

आज सवेरे टहलते वक्त रतलाम के देवकृष्ण व्यास और अवालाल जोशी को समय दिया था। डा० रामगोपाल जोशी, जो रतलाम के लोक-सेवक तथा शाति सैनिक है, उन्हे ले आये थे। वहा की परिस्थिति उन्होने समझाई। रतलाम मे एक प्रसिद्ध मदिर है, जिसमे जिनमूर्ति तथा शिव-लिंग दोनो है। सो जैन और सनातनी दोनो ही वहा जाते है। अव कानून से हरिजनो को मदिर-प्रवेश की इजाजत मिल गई है। मदिर मे हरि-जन न आने पाये, इसलिए जैनो ने शिवलिग मदिर से निकालकर फेक दिया। सरकार ने उनकी पुन स्थापना की। उसके वाद जैनो ने हाइकोर्ट की शरण ली और वहा निर्णय करा लिया कि वह मदिर तथा उसकी भूमि जैनो की व्यक्तिगत जायदाद है, इसलिए मदिर जैनो के हवाले कर दिया जाय और मूर्ति वहा से हटाई जाय। उसके अनुसार सरकार ने पुलिस की मदद से मध्यरात्रि के समय मूर्ति वहा से हटा दी। इस कारण वहुसख्य सनातनधर्मी समाज क्रुद्ध हो गया है और मारकाट की सभावना हर क्षण वनी है। सरकार ने १४४ धारा लागू की है।

विनोवा डा० रामगोपाल जोशी से वोले—

मेरे पास एक ही पक्ष आया है तो निर्णय देना असभव है। निर्णय देना ही हो तो यह दिया जा सकता है कि वह पक्ष शरणागति स्वीकार करे। पर इस प्रकार एकतरफा निर्णय देने की मेरी इच्छा नही। शातिरक्षा का भी सवाल नही, क्योकि उस काम के लिए पुलिस है ही। सिर फुटौवल की नौवत न आ जाय, वस। अत मे कोर्ट की ही शरण ली जाय, क्योकि हम सविधान को माननेवाले है।

रामगोपाल वोले, "शातिसैनिक के नाते मुझे अपनी वलि चढानी होगी।"

विनोबा बोले—जय शभो ! जय महावीर !

हिरेकेरूर · प्रात घूमने के समय,
२७-१२-५७

: ५२ :

गीतार्थ

धर्म का अविरोधी काम श्रीशकराचार्य का अर्थ

१ 'धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोस्मि भरतर्षभ् ।' गीता का यह वचन मशहूर है। इनका अर्थ यह किया जाता है कि वैवाहिक स्त्री-पुरुष-विलास धर्म को मान्य है। पर वह ठीक नही। किशोरलालभाई केवल प्रजोत्पादनार्थ स्त्रीपुरुष-सवध धर्म्य मानते हैं। ज्ञानदेव का अर्थ गोलमोल है।

पर शकराचार्य काम से अशनपानादि का अर्थ लेते हैं और उसे ही धर्म्य मानते हैं। मुझे उनका अर्थ ठीक जचता है। प्रजोत्पादन-हेतु काम के बारे मे गीता का दूसरा वचन है 'प्रजनश्चास्मि कदर्प.' 'उत्पत्ति-हेतु मैं काम। इसलिए वह अर्थ 'धर्मोविरुद्धो . ' से खीचातानी से निकालने की जरूरत नही।

गीता के दो विभूति-योग

सातवे और दसवे अध्याय मे विभूतिया दी गई है। सातवे मे 'बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्' आदि सूक्ष्म विभूतिया है, दसवे मे 'स्थिराणा च हिमालय ' आदि स्थूल है।

: ५३ :

मालथस का सिद्धान्त

मै—क्या मालथस का सिद्धान्त आपको मान्य है ? सिद्धान्त यह है कि ससार मे हर साल प्रजावृद्धि होगी और उस अनुपात मे अन्नोत्पत्ति मे वृद्धि नही होगी। इसलिए अगर लोग सुख से रहना चाहते है तो सतति-निरोध करना चाहिए। जनसख्या को सीमित रखना चाहिए।

विनोबा—लोगो के लिए खाद्यान्न की कमी महसूस नही होगी। मनुष्य से बढकर समर्थ प्राणी दूसरा नही। अगर वह अन्य प्राणियो को मारकर खाने लगा और बाघ, सिंह, कृमिकीटक भी नही छोडे गये तो अन्न की कमी क्यो रहेगी ? इसमे मनुष्यो को भी बुढापे या अन्य कारण से निरुप-योगी बन जाने पर मारकर, और उनके मरणोपरात उनका मास क्यो न खाया जाय, यह भी विचार सभव है। पर इससे मनुष्य जी जायगा, तो भी मानवता मर मिटेगी। मानवता की रक्षा के लिए उसे सयम सीखना है। अगर वह सयम नही सीखेगा तो वह महाराक्षस बन जायगा।

I am monarch of all I survey
My right there is none to dispute,
From the centre all round to the sea
I am lord of the fowl and the brute

यह तो वह कहता ही है। वह पशु-पक्षियो का प्रभु बन चुका है।

आपटे गुरुजी ने अपना मृत शरीर शिक्षा के लिए चीरफाड करने के हेतु दे दिया। अपनी सतति के पोषण के लिए वैसे ही वह क्यो न दिया जाय ? युद्ध मे जब खाने की चीजे नही दी जा सकी तब सैनिको ने मृत मनुष्य-शरीरो को फाडकर खा डाला और कभी-कभी तो जिन्दा आदमी भी खाने के हेतु मारे गये और भूख मिटाई गई। अगर आदमी केवल वासना-तृप्ति के लिए ही जीने लगे तो यह असभव नही कि वह यहातक नीचे गिर जाय। बिलाव अपनी विषय-वासना की तृप्ति के लिए नर-बच्चो को मार डालता है। पशुओ मे यह बात चलती है। पर मानव वैसा

नही करता, क्योकि वह मानवता को पहचानता है। इस मानवता, भूत-हित, दया की रक्षा के लिए उसे सयम करना है। यह केवल आर्थिक मसला नही, जैसा कि मालथस उसे मानता है।

रट्टीहल्ली के मार्ग पर,
२६-१२-५७

: ५४ :

वलिदान का आकर्षण

डोनाल्ड—सुकरात, ईसा, गाधी को अपने कार्य के लिए देह को खोना पडा। मतलब कि उन्होने अपना काम इतने जोश से मृत्यु को चुनौती देकर किया कि अन्त मे उन्हे वलिदान करना पडा। इस प्रकार का आवेश तथा आह्वान, वलिदान—अन्तिम त्याग—का आकर्षण भूदान-ग्रामदानादि क्राति मे नही दिखाई देता। क्या उसकी आवश्यकता नही? लगता है कि उस क्राति का किसी अन्य विरोधी तत्त्व से या समाज से सघर्ष या विरोध नही दिखाई देता, सो वह असरकार नही हो रही है। ईसा ने कहा है—"या तो मेरा अनुसरण करो, या विरोध करो। दोनो मे से एक भी जो नही करता, वह मेरे विचार का सच्चा शत्रु है।" गाधीजी भी यही कहते है। इस विषय मे आपका क्या मन्तव्य है?

विनोवा—मुझे नही लगता कि ऐसी आवश्यकता है।

(विनोवाजी इस प्रश्न का आशय नही समझ सके, या किसी दूसरे विचार मे डूबे हुए थे। सो प्रश्न का उत्तर ठीक-ठीक नही मिला।)

: ५५ :

विवक्षा-पाठ

मैं—ईशावास्योपनिषद् का सबेरे की प्रार्थना मे जो पाठ होता है वह पद-पाठ है। पर उसे पद-पाठ भी नही कहा जा सकता, क्योकि उसमे प्रत्येक पद अलग-अलग नही कहा जाता। उपसर्ग भी अलग कहे जाते हैं। कुछ पद, कुछ वाक्याश कहे जाते है। कोई एक निश्चित पद्धति अपनानी चाहिए।

विनोबा—तमिल प्रवधम् मे केवल पद-ही-पद है, सहिता है ही नही। पदो मे ही कहने-लिखने की पद्धति है। वही पद्धति हम क्यो न अपनाये? ईशावास्य उसी ढग से याने पद-पाठ मात्र छापा जाय। सहिता न दी जाय।

मै—या तो सहिता या पदपाठ और आगे वढकर अन्त सन्धि अलग करके उपसर्ग तथा धातुरूप भी अलग करने का आपका तरीका, जिसमे दोनो ढग का समावेश है, मुझे पसन्द नही। इसके वदले मैं विवक्षा-पाठ पसन्द करूगा। विवक्षा-पाठ मे गद्य-ग्रन्थ के वारे मे अर्थ के अनुसार सन्धि अलग करके वाक्याश या सवद्ध पदसमुच्चय दिखाये जायगे, पर हर पद अलग नही कहा जायगा। तस्यैव, ततश्च जैसे पद सहित ही रहेगे। सव पदो का अलग-अलग उच्चारण सस्कृत मे कृत्रिम-सा लगता है। पद्य मे प्रत्येक चरण अलग करना, छन्दानुरोध से चरण के वीच की सन्धि अलग करना (जैसे—आपूर्यमाणम् अचल-प्रतिष्ठम्—इस प्रकार सधि-विच्छेद किये विना सहिता-पाठ करने से छद विगड जाता है और अर्थवोध का सौकर्य भी नही रहता), विरामीकरण करना (जैसे—स शान्तिमाप्नोति, न कामकामी), कही-कही अर्थ प्रकटीकरण के लिए सहिता या छन्द को ताक पर रखकर पदो को अलग करके कहना (जैसे—वायुरनिलममृतम् के वदले वायु: अनिल अमृतम्) आदि रहेगा।

विवक्षा से मतलब मूल ग्रथकार की विवक्षा जो मेरी दृष्टि मे उचित है, उसके अनुसार पाठ याने विवक्षा-पाठ।

इस प्रकार लिखी-पढी जानेवाली सस्कृत को मै सुसस्कृत कहूगा।

विनोवा वोले—ठीक, सुसस्कृत याने सुलभ सस्कृत।

मैं—पुराना अक्षरराशिलेखन इस दृष्टि से असस्कृत ही कहा जायगा।

मासूर की राह पर,
३०-१२-५७

: ५६ :

जागतिक लिपि

मैं—हिन्दुस्तान मे तीन लिपिया रहे—१ नागरी, २ रोमन, ३ अरवी

विनोवा—पर तीनो सव जगह रहे सो वात नही। अरवी कही-कही चलेगी।

मैं—नागरी और रोमन का चलन सार्वत्रिक हो। रोमन जागतिक लिपि है।

विनोवा—नागरी ही चीन-जापान आदि एशियाई राष्ट्रो के लिए नजदीक की लिपि रहेगी।

मैं—एशिया मे अरवी हिन्दुस्तान के पश्चिम मे, और नागरी हिन्दुस्तान तथा पूर्वी देशो मे चलने की सभावना है। पर ये तीन लिपिया तथा चौथी चीनी अपनी-अपनी विशेषता रखती है। इनमे सबसे अधिक समर्थ तथा सुलभ लिपि रोमन ही है। वही जागतिक लिपि का आदर पायेगी। हिन्दुस्तान मे भी सब भाषाए उसे स्वीकार करे। अव हमे सिर्फ राष्ट्रीयता का ही खयाल नही करना चाहिए। हम अन्तर्राष्ट्रीय है, विश्वमानव है। इस दृष्टि को लेकर ही निर्णय करना चाहिए। लेकिन जवतक यह नही होता, तवतक यूरोप मे जिस प्रकार रोमन लिपि है, वैसे ही भारत मे सब भाषाओ के लिए नागरी अपनाई जाय। इसको भी मै वहुत वडी प्रगति मानूगा। उसके पहले नागरी मे कुछ सुधार कर लेना उचित होगा। मै मानता हू कि उसका दिग्दर्शन लोकनागरी द्वारा किया जा चुका है।

विनोवा—कौन-सी लिपि जागतिक लिपि के सम्मानित पद पर

आसीन होगी, यह बात जागतिक समस्याओ को कौन हल करेगा, इसपर याने पराक्रम पर निर्भर होगी। पश्चिम की बुद्धि का दिवाला निकल गया है। इस कारण अब पूर्व की तरफ आखे मुड जाती है।

: ५७ :

कणिका—९

ॐकार

१. मै—मेरे मन मे एक विचार आया कि ॐ केवल अ, उ, म् का समाहार नही। इसलिए उसे 'ओम्' नही लिखना चाहिए। 'ॐ' ही उसकी विशिष्ट मूर्ति है। वह एकजीव समग्र ध्वनि है। कठ, ओष्ठ, नासिका में से एकदम एकत्र निकलनेवाली वह ध्वनि है। सर्ववर्णो का आदिवर्ण है, इतना ही नही, वेदो का और सृष्टि का भी आदि है, सर्वादि है। वह वही है, जिसका वर्णन यों किया जाता है—'स्वत्त. सर्वं जगदिदं जायते।' ॐ तत्सद् इति निर्देशो ब्रह्मणस् त्रिविध. स्मृत । ब्राह्मणास् तेन वेदाश् च यज्ञाश् च विहिता: पुरा॥ कहकर गीता ने उसका सर्वमूलत्व, सर्वादित्व वर्णन किया है। सचराचर व्यक्त सृष्टि का याने अखिल-विश्व का वह अव्यक्त मूल है। व्यक्तमात्र क्षर है तो वह है अक्षर। अत वह मूलाक्षर कहलाता है।

विनोबा—पुरानी मराठी मे 'ओ' ही ॐ लिखा जाता था। तो ओम् और ॐ मे कैसा फर्क नहीं। वह रासायनिक सयोग है, एकजीव है, यह बिलकुल सही है। 'उपनिषदो के अध्ययन' मे उसका विवेचन किया गया है।

... .

एफ. एफ. टी.

२. मै—अहमदाबाद मे एफ एफ टी (F F T) यानी सत्मित्रपरिवार (The Fellowship of the Friends of Truth) की वार्षिक सभा होनेवाली है। उसका मै एक सदस्य हू। डोनाल्ड भी है। बापू ने अनेकानेक संस्थाए स्थापित की, चरखा सघ, ग्रामोद्योग सघ, तालीमी सघ, हरिजन सेवक सघ आदि। पर सर्व-धर्म-समभाव के लिए कोई संस्था उन्होने नहीं

कायम की। उस कार्य के हेतु यह सस्था वनी है। वापू का उसे आशीर्वाद था। उसके कार्य के वारे मे आपकी अपेक्षा क्या है ?

विनोवा—सपत्तिदान और ग्रामदान का कार्य वे करे। यह कार्य सर्व-धर्मानुकूल है।

मैं—वह सस्था मुख्यत मानसिक, वौद्धिक कार्य करने के लिए है, हार्दिक ऐक्य-सपादन के लिए है। वैचारिक समन्वय उसका प्रमुख उद्देश्य है। उन लोगो को शातिसेना का कार्य सुझाया जा सकता है।

विनोवा अन्यमनस्क से दिखाई दिये। कुछ वोले नही।

सत्तावन की समाप्ति

३ डोनाल्ड—सन् ५७ समाप्त होने को है। मुझे लगता है कि जिन्होने अवतक भूदान, सपत्तिदान आदि किया है, उन सबसे व्यक्तिगत सपर्क वनाये रखने के लिए हरेक को आप एक पत्र लिखे। उसमे सपन्न कार्य के लिए आस्था तथा होनेवाले कार्य के लिए दिशादर्शन रहे।

विनोवा—मैं भी सोच रहा हू। पर १ जनवरी, १९५८ के वदले ३० जनवरी या १२ फरवरी को वह किया जाय।

मासूर की राह पर,
३०-१२-५७

: ५८ :

भगवान् बुद्ध

वेद-निदक

मैं—वुद्ध को कई लोग नास्तिक मानते है। 'नास्तिको वेदनिंदक' यह है उनकी नास्तिक की परिभापा। "निंदसि यज्ञविधे रहह श्रुतिजातम्। सदयहृदय दर्शित पशुघातम्। केशव धृतबुद्धशरीर।" इसमे भी वुद्ध को वेदनिंदक वताया गया है। तुलसीदास ने भी कहा है—

अतुलित महिमा वेद की तुलसी कियो विचार।
जो निंदत निंदित भयो, विदित बुद्ध अवतार॥

वास्तव मे कही भी बुद्ध ने वेद की निंदा नहीं की। जाति-पाति के विरोधी देखकर जातिवादियो ने उनपर यह झूठा इलजाम लगाया है, उनकी निंदा की है, बदनामी की है। बुद्ध के समय मे और इसके अनतर भी भगवान बुद्ध का आदर ब्राह्मण करते थे। उनके धर्म-प्रचारक और प्रमुख शिष्य सारिपुत्त तथा मोग्गलान इत्यादि ब्राह्मण ही थे। बुद्ध के मन मे भी ब्राह्मणो के लिए नितात आदरभाव था। धम्मपद का अतिम वर्ग, जो सबसे बडा वर्ग है, ब्राह्मण-वर्ग है। पर आगे चलकर बौद्ध राजाओ को परास्त करने के लिए हिंदू राजाओ ने जो सर्वतोमुखी प्रयास किया, उसका एक मौलिक तथा प्रभावी अग था बुद्ध, धर्म तथा सघ की निंदा, बदनामी और विपर्यास। 'एडूक-प्राया पृथिवी भविष्यति कलौ युगे।' 'सम्मोहाय सुरद्विषा बुद्धो नामा-जन-सुत कीकटेषु भविष्यति' आदि भागवत के तथा अन्य हिंदू ग्रथो के वचन इसी प्रवृत्ति के प्रतीक हैं। यज्ञयागो की निंदा तो खुद उपनिषदो ने भी की है—'प्लवा ह्येते ह्यदृढा यज्ञरूपा' आदि से। निरीश्वरवादी है, इसलिए बुद्ध को नास्तिक कहा जाय तो कपिल मुनि क्या थे? आपका क्या अभिप्राय है, इस विषय मे?

नारायण हमारी पसदगी की चीजे देता है

विनोबा—जो पूर्वजन्म, पुनर्जन्म तथा कर्मफल मे विश्वास करता है, स्वर्ग, नरक तथा मोक्ष मे जिसकी श्रद्धा है, वह कैसा नास्तिक, निरीश्वर-वादी और अनात्मवादी? अतिम तत्त्व, परमार्थ शब्दातीत है। विष्णु सहस्र नाम मे कहा है—'शब्दातिग शब्दसह।' शब्दातीत वस्तु का वर्णन करने मे कल्पना का सहारा लेना पडता है। मतभेद की गुजायश यही है। जो कल्पना अधिक तर्क-सगत हो, उसे लेना पडेगा। तो भी इसमे पसदगी का भी सवाल है। नारायण हमारी पसदगी की वस्तु देता है। किसीको अद्वैत, किसीको द्वैत तो किसीको विशिष्टाद्वैत भाता है। बुद्ध ने एक अलग रुचि दिखाई है तो उसमे क्या हर्ज है? वेदान्त से वह सुसगत ही है। द्वैत, अद्वैत, विशिष्टताद्वैत सब वेदान्त ही है। वैसे ही बुद्ध का भी अपना निजी वेदात है। धम्मपद की वेदान्ती टीका क्यो न की जाय?

आत्मा

धम्मपद मे आत्मा शब्द वार-वार आया है। वहा हर वार बौद्धो को वताना पड़ेगा कि 'आत्मा' यहा वेदान्ती आत्मा नही है। हमे ऐसा कुछ नही करना पडेगा। **'अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया'**। यह क्या है ? **'आत्मैव ह्यात्मनो बंधुः'**। इन दोनो मे क्या अतर है ? आप कहते है कि आत्मा प्रवाहरूप नित्य है; पर वही मै हू यह अनुस्मरण उसे कैसे सभव है ? 'ब्रह्मसूत्र' मे 'अनुस्मृतेश्च' सूत्र से आत्मा का निरतर एकत्व कूटस्थ लक्षण के रूप मे विवरित है।

वासना-निर्वाण और ब्रह्म-निर्वाण

बौद्ध निर्वाण से वासना-निर्वाण का अभिप्राय है, सो उसको उपमा दीप-निर्वाण की देते हैं। उस अवस्था को शून्य कहते है। पर गीता उस निर्वाण को ब्रह्म-निर्वाण मानती है, और उसे जलती दीपज्योति की उपमा दी जाती है। **"यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता। योगिनो यत-चित्तस्य युंजतो योगमात्मन.॥"** गीता ज्ञानावस्था को महत्त्व देकर बोलती है तो बौद्ध विचार मे वासना-क्षय को महत्त्वपूर्ण माना है। दोनो मेरी राय मे एक ही है। 'स्थितप्रज्ञ-दर्शन' मे अत मे मैने वताया ही है—**एकं ब्रह्म च शून्य च य' पश्यति स पश्यति।**

पुनर्जन्म

पुनर्जन्म मे विश्वास करने के लिए दो कारण है—

१ वचपन से ही मेरी पसदगी मे विशेषता क्यो ? किसी विषय की ओर मुझे खिचाव नही है, यह किस वात का लक्षण ? पूर्वजन्म मे उसका अनुभव लेकर उस विषय मे मै निस्पृह वन गया हू, उसमे मुझे कुछ सार नही दिखाई देता, इसीका वह लक्षण है। अन्य लोग गृहस्थी मे फस जाते हैं, उनके बारे मे मेरे मन मे तुच्छता का भाव नही। इसका अर्थ यही है कि उनकी साधना अवतक अधूरी ही रही है। उन्होने अनुभव नही पाया है।

२ एकाध बच्चा एक साल की उम्र पूरी करने के पहले ही मर जाता है। इसका क्या कारण है ? उसका पूर्व-कर्म ही इसका कारण हो सकता

है। इस जन्म मे तो उसने कुछ पाप किया है सो नही दिखाई देता। सब कर्मों—पाप या पुण्य—के फल यही मिलते है, मान लें तो अलग बात है। पर इस प्रकार का अनुभव नही। इन दो कारणो के लिए पुनर्जन्म मे विश्वास करना पडता है।

ईसाई, इस्लाम, यहूदी ये सेमेटिक धर्म पुनर्जन्म नही मानते। पर उसके खिलाफ भी उन्होने नही लिखा। अब उनमे जो विचारी लोग है, पुनर्जन्म मानने लगे है। भारत, यूरोप और अमरीका मे बहुत-से ईसाई अब पुनर्जन्म मे विश्वास करते है।

षड्दर्शन और ब्रह्मसूत्र भाष्य के अनुवाद

प्रारभ मे मैंने षड्दर्शनो का अध्ययन मराठी द्वारा किया। सयाजी ग्रथमाला मे प्रकाशित करीब सब ग्रथ मै पढ चुका था। उस ग्रथमाला मे 'विवाह-विधि 'और समारोह'—जिसमे १८२ विभिन्न रीतिया वर्णित है, और ब्रह्म-विवाह का सविस्तर विवेचन है—से लेकर अभ्यकर शास्त्री-कृत 'ब्रह्मसूत्रशाकरभाष्य—मराठी भाषातर' तक ग्रथ प्रकाशित हुए है। रसायन, भौतिक विज्ञान, आदि अनेकानेक विषय मैंने उस माला मे या अन्यत्र मराठी पुस्तको मे पढ लिये थे। अभ्यकर शास्त्री ने ब्रह्मसूत्र-शाकरभाष्य का मराठी अनुवाद सरल भाषा मे किया है। सूत्र भी और भाष्य भी मराठी मे दिये है।

मै—इतने सालो के बाद उसका दूसरा सस्करण अभी निकला है। तीन खड है। प्रथम सस्करण मैंने देखा था। उसका मराठीपन तथा पाद-टिप्पणिया उसकी विशेषताए थी, जो विशेषतया मुझे भाई थी। लेलेशास्त्री का अनुवाद भी मुझे उपयुक्त जचा। पर बापट शास्त्री का अनुवाद कुछ और ही है, वह भयानक अनुवाद है।

विनोबा—बापटजी का अनुवाद लेलेजी के अनुवाद की अपेक्षा अधिक फेथफुल (मूलनिष्ठ) है। तो भी अनुवाद समझने के लिए बहुत बार मूल ग्रथ की सहायता मिलती है। अन्य अनुवाद केवल मूलग्रथ समझने मे हमारी मदद करते है, यह अनुवाद भी मदद देता है। पर अनुवाद को समझने में मूल की मदद मिलती है, यह है इसकी विशेषता।

'षड्दर्शन' पर व्यग्यात्मक कविता

यह सब ग्रथ, षड्दर्शन, जब मैने पढे तबकी वह कविता है, जिसमे तुम कहते हो कि षड्दर्शनो का औपरोधिक वर्णन मैने किया है। मै कहा करता था—"गाय के चार पैर होते है, टेबल के चार पैर होते है। अब ये पैर, जिनका वर्णन तुम करते हो, सचमुच है या नही है ? विद्यमान पैरो का वर्णन हो तो जो दिखाई देता है उसका वर्णन करने से क्या लाभ ? अगर अविद्यमान हो तो तुम मिथ्या बोलते हो। तो इस चर्चा से क्या लाभ ? मटका कैसे पैदा हुआ ? तुम चर्चा करते हो। जो मिट्टी मे विद्यमान था वही मटका बनाया गया, या जो अविद्यमान था ? अगर वह मिट्टी मे था ही नही तो वह आया कहा से ? मिट्टी मे नही था तो भी वह उसमे से निकला, यह अगर तुम्हारा कहना हो, तो दही से मटका क्यो नही बनता ? ये चर्चाए चलाने तुम बैठो, चाहे तुम किसी निर्णय पर पहुचो या न पहुचो, कुम्हार अपना मटका बनाता ही है।"

मूर्तिपूजा की कड़ी आलोचना

बिहार के किसी गाव मे मैने मूर्तिपूजा पर बडी कडी आलोचना की। 'लोग पत्थर की मूर्ति की पूजा करते-करते खुद पत्थर बन चुके है, वे सगदिल बन गये है। उनमे न करुणा है, न उनका दिल दया से द्रवित होता है।' मेरा वक्तव्य सुनकर एक भक्त बडे नाराज हो गये। वह बोले—आपका 'गीता-प्रवचन' पढकर, उसमे जो तुलसी-पूजा, आरती, धूप आदि की चर्चा है उसे पढकर, मै आया, पर आपने मेरी श्रद्धा को चूर-चूर कर डाला। लोगो ने उन्हे समझाया—बाबा दोनो तरफ से बोलता है।

हिंदूधर्म का सर्व-धर्म-समन्वय

तत्त्ववाद भले ही भिन्न-भिन्न हो, पर साधना के बारे मे भारत-भर मे एकमत है। हिंदूधर्म ने सर्व-धर्म-समन्वय किया है। राजम्मा के पिताजी कट्टर हिंदू है, पर उनके देवगृह मे ईसा की तस्वीर बिना किसी विरोध के रह सकती है। इन रेकन्सिलिएशन वालो की बात इसके विपरीत है, वे यह मानने को कतई तैयार नही है। ईसा की श्रद्धा के बिना मुक्ति मिल सकती है। कम-से-कम यह है कि औरो की अपेक्षा ईसा का महत्त्व उनके लेखे

अधिक है।

नास्तिक ईश्वर को नही मानता। पर वह प्रामाणिक है। आस्तिक ईश्वर को मानते हुए भी भेद को आश्रय देता है। यह अप्रामाणिकता है। जव ईश्वर एक ही है तो उसके भक्तो को चाहिए वे भेदभाव को हटाकर एक हो जाय।

मासूर के मार्ग पर,
३०–१२–५७

: ५६ :

कणिका—१०

पाच धर्म-तत्त्व

१ मै—आप कहते है कि आज दुनिया मे केवल श्रद्धा (Faith) है, एक धर्म-श्रद्धा है, पर अवतक धर्म नही वना। तो धर्म के कुछ तत्त्व वताइयेगा।

विनोवा—स्वामित्व-विसर्जन, सत्य, अहिसा, सयम तथा श्रमनिष्ठा ये है धर्म-तत्त्व। नवसमाज की रचना इन्हीपर आधारित रहे। ग्राम सेवा-मडल, सर्व सेवा सघ और काग्रेस इन सस्थाओ के साथ मेरा सवध रहा है। उनको चाहिए कि वे इस कार्य को अपनाले।

सर्वज्ञ और कवीर

२ मासूर (जि० धारवाड) सर्वज्ञ नामक कन्नड कवि का जन्म-स्थान है। उसका जन्म ईसा की तेरहवी सदी मे हुआ। उसका पिता था ब्राह्मण और माता थी कुम्हार-कन्या। कवीर की भाति उसने सव विषयों पर सुभाषित उक्तिया कन्नड मे लिखी है। अनत रगाचारी ने कल की प्रार्थना-सभा मे सर्वज्ञ के कई वचन गाये थे। उसे लेकर आज सवेरे पदयात्रा मे चर्चा छिड गई।

कामाक्षी—कल आपने कहा कि सर्वज्ञ

कहना दूसरे अर्थ मे भी ठीक है। कवीर की भाति ही सर्वज्ञ का जन्म हुआ था।

विनोवा—हिदी मे रहीम, तमिल मे वेमन्ना, वैसे कन्नड मे सर्वज्ञ सुभाषितकार कहा जा सकता है। कवीर की सूक्तिया भी मशहूर है। तो भी कवीर की योग्यता बहुत उच्च स्तर की है। उसके समान असाम्प्रदायिक स्वतत्र विचारवाला पुरुष विरला ही मिलेगा। उसकी रचना गूढ है। कबीर के नाम पर प्रचुर कविता मिलती है, पर सब उसकी नही है।

हिंदी-प्रचार 'धधा' बन गया है !

कामाक्षी—हिन्दी की परीक्षा मे कवीर, तुलसी आदि हिन्दी कवियों की रहस्यवादी तथा भक्तिपरक रचनाए और उनकी समालोचना नियुक्त रहती है। कितने ही विषय रहते हैं।

विनोवा—हिन्दी के अध्ययन के लिए पुराने पद्य-साहित्य तथा साहित्य-चर्चा की क्या जरूरत ? इन लोगो का वह 'धधा' बन बैठा है। उस दिन वेगलूर मे मैंने कहा—जब हिन्दी का प्रचार जारी है तो और गाधी-विचार-प्रचार की क्या आवश्यकता ? हिन्दी की पढाई, हिन्दी का प्रचार गांधी-साहित्य का, गाधी-विचार का ही प्रचार है। पढनेवालो को गाधी-रीति पढानी है कि रसरीति ?

आज्ञा मेरी रीति नही है

३ कल नारायण का पत्र आया। उसमे उसने एक वडे महत्त्व की वात का उल्लेख किया है। वह कहता है—"पिछले छ -सात सालो मे आपने कभी मुझसे नही कहा कि यह करो या वह करो।" यह मेरी रीति ही नहीं है। कभी-कभी मैंने सीधे किसीको कुछ करने की आज्ञा की है। उस वक्त मैं हार गया था, मात खाई थी। मैंने वापू के वारे मे भी यह वात देखी है। वह भी किसीको कभी कुछ करने, न करने की आज्ञा नही सुनाते थे। पर कभी-कभी उन्हे आज्ञा करनी पडी और उससे काम विगड गया।

साने गुरुजी के वारे मे मेरी गलती

४ वाहर आने मे मुझे देर हो गई। मेरा कार्य पहले शुरू हो जाता

तो गुरुजी रह जाते। उन्हे सीधा आदेश देना मेरा कर्तव्य था। पर वह मेरी गलती हो गई।

बाघिन का दूध पीकर क्रूर बने

५ चिपलूणकरजी अग्रेजी विद्या को वाघिन का दूध कहा करते। उनकी धारणा थी कि उससे हम शूर बन जायगे। मुझे लगता हे कि क्रूर बन गये हैं। मनुष्य से जानवर वन गये और वह भी जगली। मुझे लगता है कि गाय का दूध ही अच्छा। पर उसकी चाह नही चाहिए। मा का दूध पी लिया है, वही पर्याप्त है।

घुमक्कडी करो

६ विनोबा—दातारजी साठ साल पूरे कर रहे है, आपकी क्या उम्र है, कुटेजी ?

"पाच साल बडा हू।"

"याने मुझसे तीन साल। आप हर रोज ५-६ मील घूमते रहिये।"

"आपके साथ ८-१० मील भी चल सकता हू, पर अकेले घूमना मुश्किल लगता है।"

मैं—विनोवा बचपन से ही घूमा करते हैं। पर वह अकेले शायद ही घूमे हो। चार-पाच को साथ लेकर ही वे घूमने जाते थे और अब भी जाते हैं।

विनोवा—कुदर ठीक कहता है। साधना समाज के साथ ही की जानी चाहिए। एकान्त मे भी मानसिक समाज हुआ ही करता है। अपने मे समाज की कल्पना करते हुए साधना की जाय।

ब्रह्म और ब्रह्मविद्

७ ब्रह्म होना याने सम होना। केवल कॉमनमैन नही तो कॉमन थिंग भी। जो ब्रह्म हो गया वह अपनेको कोई विशेष व्यक्ति रूप नही महसूस करता। वह सवसे एकरूप वन गया। शकराचार्य कहते हैं 'स ब्रह्मैव भवति, न ब्रह्मवित्'। वडा मार्मिक वचन है यह। ब्रह्मवित् अलग होता है,

वह ब्रह्म नही है। ब्रह्म होना याने अलगपन का लोप हो जाना।

रामायण का रमणीयत्व

८ कल रामायण मे राम के राजतिलक की तैयारियो का वर्णन पढा। पर राम ने पहले अपनेको अभिषेक नही करवाया। उसने कहा कि चतु.-समुद्र और सब नद-नदियो के जल से पहले सुग्रीव आदि को नहलाया जाय। उसने पहले अपनी जटाओ को नही, भरत की जटाओ को अपने हाथो सुलझाया। (वहा 'नियराए' कहा गया है। उसने स्वय बाल काटे या जटा सुलझाई ?) ईसा ने ठीक यही किया। उसने अपने हाथो अपने चेलो के चरण धोये। इस कारण ही रामायण हमारे सिर आखो पर है।

राम मे साम्ययोग कैसा रोम-रोम मे समा गया था ! प्रथम वन जाने से पहले जब राजतिलक निश्चित हुआ और व्रत, उपवास आदि की सूचना देने कुलगुरु वसिष्ठ राम के पास आये तब राम कहता है—"आप क्यो आये ! मै ही आपके पास आ जाता," और बाद मे कहता है—"इस रघुकुल मे सब-कुछ ठीक है, पर अकेले ज्येष्ठ पुत्र को गद्दी पर बिठाते है, यह ठीक नही।" हम सब भाई साथ-साथ खेले, साथ ही पढाई की, साथ खाया, साथ पिया और राज्य मुझ अकेले को दिया जा रहा है, सो कैसे ? इसका उसे बडा अचरज मालूम हुआ। बाद मे जब वन जाना तय हुआ, तब उसके आनन्द का क्या कहना ! जैसे जगल मे पकडकर लाया हुआ और जजीरो मे जकडा हुआ हाथी छुटकारा पा जाय और आनन्द से, खुशी से, वन की ओर दौडता चले, वैसे ही राम वन जाने के लिए उत्सुक हो उठा। यह है रामायण की रमणीयता।

जिप्सी मेरे पैरो मे प्रकट है

९ आज दोपहर को मगेश पाडगावकर, और पु र्ल देशपाडे आये है। प्रार्थना-प्रवचन के बाद वह थोडी देर के लिए विनोबा के पास बैठे थे। मगेश ने अपनी कुछ कविताए पढ सुनाईं। अन्त मे जिप्सी कविता गाई।

विनोबा बोले—"आजकल लोग निर्यमक पद्य लिखने लगे है। आपका सयमक गद्य मालूम देता है। जिप्सी आपके मन मे छिपा हुआ है,

पर मेरे पैरो में प्रकट है ।"

पु ल देशपाडेजी ने भी एक राजस्थानी गीत सुनाया और साने गुरुजी के उपवास के कारण पढरपुर के विट्ठल-मदिर मे हरिजनो को प्रवेश मिला उस प्रसग को लेकर लिखा हुआ स्वकृत पद्य भी।

नेलवागीलू के मार्ग पर,
३१-१२-५७

: ६० :

जीवन का शास्त्रीय नियोजन

विनोबा—आज डा दातार अपने साठ साल पूर्ण कर रहे है। उसके उपलक्ष मे आपने तय किया है कि आगे का समस्त जीवन शुद्ध निष्काम सेवा मे लगायेगे। इस निश्चय के लिए वह भगवान की दुआ माग रहे है। वैसे तो उनका समूचा जीवन सेवा मे ही व्यतीत हुआ है। आजतक उन्होने जो पेशा अपनाया था उसमे दुखी मानवता की सेवा ही उन्होने की है। वह सर्जन थे। हजारो की तादाद मे उन्होने आपरेशन किये। मतलब यह कि दुखियो के दु खमोचन का काम किया। रोग से, दु ख से, मुक्ति तो भगवान ही देते है, डाक्टर केवल चीर-फाड किया करता है, यह भी वह जानता है। इस सेवा को निष्काम नही कहा जा सकेगा। उसमे अपेक्षा थी। पर उसे अब वह छोड चुके है और साहित्य-प्रचार का, भूदान का कार्य कर रहे है। पर अबतक वह आशिक समय दे सके है। घरेलू झझटो मे फसे हुए थे, इससे पूरा समय नही दे सकते थे। अब उनसे मुक्त हो गये है। चाहते है कि आगे इस कार्य मे पूरा समय देगे। शातिसैनिक भी होना चाहते है।

६० साल की उम्र ऐसी अवस्था होती है कि उस वक्त आदमी के विचार पक्के हो जाते है। शरीर तथा मन की तृप्ति हो गई होती है। अनुभव प्रचुरता से इकट्ठा हुआ होता है। इनकी बदौलत आगे का जीवन एक निश्चित पद्धति से तथा बुद्धि की स्थिरता को लिये हुए बीत सकता है। भारतीय समाज का एक बडा गुण यह है कि मनुष्य का मानसिक विकास

सुव्यवस्थित रीति से कैसा हो इसका मार्ग-दर्शन उसने ठीक-ठीक किया है। मनुष्य-जीवन की कई अवस्थाए होती है। शेक्सपियर ने सात अवस्थाए मानी है। वह नाटककार था। उसने मानव-जीवन की सात भूमिकाए मानी है। भागवत मे भी मानवजीवन की भूमिकाओ का वर्णन पाया जाता है। उनको शास्त्रीय रूप प्रदान करने का काम हमारे शास्त्रकारो ने किया है। मनुष्यजीवन के विभाग शास्त्रीय पद्धति से किये गए है। छुटपन मे ब्रह्मचर्य वेदाध्ययन, गुरुसेवा, युवावस्था मे गृहस्थाश्रम, गृह-सेवा, कर्मयोग, यज्ञ, दान, तप आदि, उसके वाद वानप्रस्थ याने गृहमुक्त सेवा, और आगे केवल ईश्वरचितन। ज्यो-ज्यो इस विषय मे विचार करता जाता हू, त्यो-त्यो मै विस्मयविमुग्ध हो जाता हू। ऐसी योजना के बिना भी ज्ञानी लोग जग मे सचार करते है। पर अज्ञानी लोगो के लिए शास्त्रकारो ने ब्रह्मचर्यादि आश्रमो की व्यवस्था कर रखी है। प्रशस्त मार्ग वनने पर आखवाले के पीछे-पीछे अधा भी मार्गक्रमण कर सकता है। ऐसा ही एक सुगम मार्ग शास्त्रकारो ने वना रखा है। परम ज्ञानी को यह आवश्यक नही कि वह एक-एक सीढी को पार करता जाय। शकराचार्य ने कहा है कि ऐसे ज्ञानी 'ब्रह्मचर्यादेव' 'कृतसन्यासा' होते है। वीच की सीढिया—गृहस्थाश्रम और वानप्रस्थाश्रम उन्होने छोड दी थी। पहली सीढी से कूदकर ही वे अतिम सीढी पर पहुच गये। शुक, ज्ञानदेव, ईसा इसके उदाहरण है। यह योग्यता वड़े भाग्य का लक्षण है। वह महान पुण्य है। ईश्वर की वह कृपा है। तभी वह सिद्ध होता है। ईसा से उसके चेलो ने पूछा—"विना गृहस्थाश्रम का अनुभव किये, उसमे प्रविष्ट हुए विना ही क्या आदमी को ऐसी हरिशरणता का ज्ञान हो सकता है?" ईसा ने कहा—"वह तो उन्हीको मिलेगी, जिनको वह ईश्वरदत्त है (To whom it is given)। (यहा विनोबा गद्गद् हो चुप हो गये, आखो से आसू वहने लगे।) तो यह पूर्वपुण्य का फल है। लेकिन जो इस पूर्वपुण्य के भागी नही है और गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम मे से होकर आखिरी सीढी तक पहुच गये उनकी पुण्यवत्ता भी कम नही। उनका पूर्वपुण्य भले ही कम रहे, पर इस जन्म का वहुत है। तो ऐसा यह मार्ग हमारे पूर्वजो ने हमारे लिए प्रशस्त कर दिया है। उसका पुनरुज्जीवन करना है। उसके लिए नितात उपयुक्त ये मत्र है, उनका उच्चार हम यहा

करेंगे—

> १ सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
> सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
> अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
> य पश्यन्ति यतय क्षीणदोषा ॥
>
> २ सत्यमेव जयते नानृतं
> सत्येन पन्था विततो देवयान ।
> येनाक्रमन्ति ऋषयो ह्याप्तकामा
> यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम् ॥

सत्य से आत्मलाभ होता है, तप से आत्मलाभ होता है। कोई मारता है तो उसे बरदाश्त करो, कोई गुस्से मे भर जाता है तो उससे प्यार से बाते करो। यही तप है। इसीको आजकल अहिंसा कहते हैं। सम्यग् ज्ञान से और ब्रह्मचर्य याने मनोनिग्रह से आत्मदर्शन मिलता है। इन साधनो से होनेवाला आत्मदर्शन कहा होता है? अन्त शरीरे—अन्दर, अपने शरीर मे एक स्थान होता है वहा। ज्यो-ज्यो दोष क्षीण होते जाते हैं त्यो-त्यो उसका दर्शन अस्फुट से स्फुट होता जाता है।

ईश्वर के पास पहुचने का मार्ग सत्य से बना है। उस मार्ग से जाना कहा है? तो जहा वह सत्य का परम निधान है। वह ईश्वर सत्य का खजाना है, भडार है। जिस साधन या वाहन से जाना है, वह भी सत्य है। मतलब यह कि मार्ग सत्य, घोडा—वाहन—सत्य, और जहा पहुचना है वह अन्तिम साध्य, वह स्थान भी सत्य ही है। इस प्रकार सत्य ही साधन, सत्य ही मार्ग और सत्य ही मजिल है। यह है सत्य का मार्ग।

निश्चय या सकल्प करने के लिए जरूरत नही कि अमुक आयु पूर्ण हो। जिस दिन सुझाव मिला उसीको शुभ समझकर उसी दिन से सकल्प किया जा सकता है। पर किसी विशिष्ट दिन मे चिंतन सभव होता है। स्वाभाविक है कि ६० साल पूर्ण करने पर विशेष चिंतन का अवसर मिला। डा दातार के लिए और हम सबके लिए ही प्रार्थना करें कि हम सबका जीवन निष्काम सेवा मे व्यतीत हो।

शिकारपुर के मार्ग पर,
१ जनवरी १९५८

: ६१ :

लौट आओ

जब मै बोलना चाहता था या कोई महत्त्व की चर्चा सुनना चाहता था तब विनोबा के साथ पहली कतार मे चलता था, अन्यथा भीड से दूर दूसरो से बोलता रहता था। आज भी वैसे ही पीछे था। शिकारपुर के लोग स्वागत के लिए आये थे। रास्ते मे भीड बढती जा रही थी। इसलिए मै एकदम पीछे था। इतने मे गुडाचारी आये और बोले कि विनोबा आपको याद कर रहे है।

धम्मपद हमारा ही ग्रथ

मै विनोबा के पास गया। वह बोले—

अब तुम पूना मे रहकर काम करो। तुम्हारा काम यहा ठीक नही होगा। एक जगह बैठकर उसे करना है। तुम्हे इतने दिन यहा ठहरा लिया, इसलिए कि तुम्हे यात्रा का अनुभव मिले। कोश का काम पूरा करके २६ तारीख को हुबली आ जाओ। धम्मपद के सरल मराठी अनुवाद का काम करेगे। धम्मपद अपना ही ग्रथ है। उसे रिक्लेम करना है। उसका रूप भी अपना ही है, अलग कुछ नही। तो भी परिभाषा के कारण और गलतफहमी की बदौलत वह उपेक्षित रहा है। उसे अपना रूप दिलाना है, अपना बनाना है।

जैसा पुराण, वैसा कुराण

एक बार बापू को मैने एक पत्र लिखा था। उसमे लिखा था कि मै अब कुराण का अध्ययन कर रहा हू। बापू ने लिखा—हम 'कुरान' लिखते है, तुम 'कुराण' क्यो लिखते हो ? उसके जवाब मे मैने लिखा कि वह कुरान का हमारा रूप है। जैसा पुराण, वैसा कुराण। वह कुछ पराया नही है। आत्मीयता उससे बढ जाती है। अपना रूप दिये बगैर वह शब्द आत्मसात् नही हुआ करता।

बापू ने यह भी लिखा था—अगर तुम कुराण के अध्ययन के लिए कुछ किताबे वगैरा चाहते हो तो लिखो। मूल अरबी मे पढने के पूर्व कुराण के

छ-सात अनुवाद मै पढ चुका था। पिक्थॉल, अमरअली, मोहम्मदअली, देवबन, शिवली और निजामी के किये अंग्रेजी, उर्दू, हिन्दी, मराठी अनुवाद मै पढ गया था। मुझे ऐसा लगा कि ये अनुवाद मूल धात्वर्थ से दूर ले जा रहे है, इसलिए मूल अरबी मे उसे पढने का निश्चय मैने किया।

प्रवेश-द्वार

मै—गणित, व्याकरण और मनोविज्ञान अन्य सब विद्याओ के प्रवेश-द्वार माने जाते है। गणित विज्ञान का, व्याकरण साहित्य का और मनोविज्ञान आध्यात्मिक ज्ञान का प्रवेश-द्वार हे। वैसे ही मुसलमान भाइयो के हृदय मे प्रवेश करने के लिए कुराण का ही प्रवेश-द्वार मै मानता हू। आपने इसका अध्ययन मूल ग्रथ से किया सो ठीक ही किया। धम्मपद के द्वारा समूचे बौद्ध जगत मे हमारी पैठ होगी। इसलिए मुझे यह काम रोचक और महत्त्वपूर्ण जचता है। अठारह साल पहले ही धम्मपद का समश्लोकी अनुवाद मैने किया है। उसमे मेरा उद्देश्य था अपनी वाणी को पवित्र करना।

सब धर्मो का अध्ययन वेदाध्ययन ही

"जगत् के सब धर्मग्रथ इस प्रकार मै मराठी मे ला रहा हू। केवल धम्मपद से नही तो इस प्रकार के सारे धर्मग्रथो को मै रिक्लेम करना चाहता हू। इसे मै धर्मसकीर्तन समझता हू। धर्म-कार्य ही मानता हू। 'इतिहासपुराणाभ्या वेद समुपबृहयेत' यह पुरातन सीख है। मुझे लगता हे कि जागतिक धर्मग्रथो के अध्ययन से उसे मै कार्यान्वित कर रहा हू। मतलब कि यह मेरा वेदाध्ययन ही चल रहा है, यह मेरा विश्वास है।" लौटते हुए मेरे मन मे यह विचार आया।

शिकारपुर,
१-१-५८